भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य

प्राकृत संस्कृत आदि में निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन,
साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन करना

सञ्चालक

भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १–४

प्राप्तिस्थान
मैनेजर
भा० दि० जैन संघ
चौरासी, मथुरा

मुद्रक—कन्हैयालाल, कैलाश प्रेस, बी० ७/९२ हाड़ाबाग (सोनारपुर) वाराणसी।

स्थापनाब्द]   प्रति ८००   [वी० नि० स० २४६८

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No. 1 IV

KASAYA-PAHUDAM

IV

THIDI VIHATTI

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF

VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri,

EDITEOR MAHABANDHA
JOINT EDITOR DHAVALA,

Pandit kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha, Sidhantaratna,
Pradhanadhyapak Syadvada Digambara Jain
Vidyalaya Banaras.

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT
THE ALL-INDIA DIGMBAR JAIN SANGHA
CHAURASI MATHURA

VIRA SAMVAT 2483] VIKRAMS 2013 [1956 A. C.

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year—] [—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana, Purana, Sahitya and other Works in Prakrit, Sanskrit etc. Possibly with Hindi Commentary and Translation.

DIRECTOR

SRI BHARATAVARSIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL. IV

To be had from —

THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA.
CHAURASI, MATHURA,
U P. (INDIA)

Printed by—Kanhiaya Lal
At The Kailash Press, B. 7/92 Hara Bagha, Sonarpur Banaras

800 Copies

Price Rs. Twelve only

nthamala

Shravan Samvat 2468

Siddhanta,
other Works
ly with Hindi
lation.

RA JAIN SANGHA
n

NGHA
ASI MATHURA
U. P (INDIA)

Lal
la Sonarpur Benares.

Price Rs. Twelve only

प्रकाशक की ओरसे

श्री कसायपाहुड (जयधवला) के चौथे भाग स्थितिविभक्ति और पाँचवें भाग अनुभाग विभक्तिका प्रकाशन एक साथ हो रहा है। इसका कारण यह है कि जिस प्रेसमें चौथा भाग छपनेके लिए दिया था उस प्रेसने उसे छापनेमें आवश्यकतासे अधिक विलम्ब किया। साथ ही शुरूके पाँच फर्मोंको दीमक चाट गई। तब वहाँसे काम उठाकर दूसरे प्रेसको दिया गया। किन्तु शुरूके पाँच फर्मोंको छापकर देनेमें पहले प्रेसने पुनः अनावश्यक विलम्ब किया। इतनेमें तीसरे प्रेसने पाँचवाँ भाग छापकर दे दिया। इस तरह ये दोनों भाग एक साथ प्रकाशित हो रहे हैं। दीपावलीके पश्चात् छठा और सातवाँ भाग भी प्रेसमें दिये जानेके लिये प्रायः तैयार हैं।

इन सब भागोंका प्रकाशन संघके वर्तमान सभापति दानवीर सेठ भागचन्द जी डोंगरगढ़की ओरसे हो रहा है। सेठ साहब तथा उनकी धर्मपत्नी सेठानी नर्मदाबाईजी बहुत ही धर्मप्रेमी और उदार हैं। आपके साहाय्यसे यह कार्य शीघ्र ही निर्विघ्न पूर्ण होगा ऐसी आशा है। आपकी उदारता और धर्मप्रेमकी सराहना करते हुए मैं आपको बहुत २ धन्यवाद देता हूँ।

इस भागके सम्पादन आदिका भार श्री पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीने वहन किया है, मेरा भी यथाशक्य सहयोग रहा है। मैं पंडितजीको भी हृदयसे धन्यवाद देता हूँ।

अपने जन्मकालसे ही जयधवला कार्यालय काशीके स्व० बा० छेदीलालजीके जिनमन्दिरके नीचेके भागमें स्थित है। और यह सब स्व० बाबू साहबके सुपुत्र बा० गनेशदासजी और सुपौत्र बा० सालिगरामजी तथा बा० ऋषभदासजीके सौजन्य और धर्मप्रेमका परिचायक है। अतः मैं आप सबका भी आभारी हूँ।

इस भागका बहुभाग 'बम्बई प्रिन्टिंग प्रेस' तथा अन्तके कुछ फर्मे 'कैलाश प्रेस' में छपे हैं। दोनोंके स्वामी तथा कर्मचारी भी इस सहयोगके लिए धन्यवादके पात्र हैं।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, काशी
दीपावली २४८०

कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैनसंघ, मथुरा




विषय-परिचय

प्रस्तुत अधिकारका नाम स्थितिविभक्ति है। कर्मका बन्ध होनेपर जितने कालतक उसका कर्मरूपसे अवस्थान रहता है उसे स्थिति कहते हैं। स्थिति दो प्रकार की होती है—एक बन्धके समय प्राप्त होनेवाली स्थिति और दूसरी सक्रमण, स्थितिकाण्डकघात और अध'स्थितिगलना आदि होकर प्राप्त होनेवाली स्थिति। केवल बन्धसे प्राप्त होनेवाली स्थितिका विचार महाबन्धमें किया है। मात्र उसका यहाँपर विचार नहीं किया गया है। यहाँ तो बन्धके समय जो स्थिति प्राप्त होती है उसका भी विचार किया गया है और बन्धके बाद अन्य कारणोंसे जो स्थिति प्राप्त होती है या शेष रहती है उसका भी विचार किया गया है। मोहनीय कर्मकी उत्तर प्रकृतियाँ अट्ठाईस हैं। एक बार इन भेदोंका आश्रय लिए बिना और दूसरी बार इन भेदोंका आश्रय लेकर प्रस्तुत अधिकारमें विविध अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर स्थितिका सागोपांग विचार किया गया है। वे अनुयोगद्वार ये हैं—अद्धाच्छेद, सर्वविभक्ति, नोसर्वविभक्ति, उत्कृष्टविभक्ति, अनुत्कृष्टविभक्ति, जघन्यविभक्ति, अजघन्यविभक्ति, सादिविभक्ति, अनादिविभक्ति, ध्रुवविभक्ति, अध्रुवविभक्ति, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष भाव और अल्पबहुत्व। मूलप्रकृति स्थितिविभक्ति एक है, इसलिए उसमें सन्निकर्ष अनुयोगद्वार सम्भव नहीं है, इसलिए इस अधिकारको उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा ही जानना चाहिए।

अद्धाच्छेद—अद्धा शब्द स्थितिके अर्थमें कालवाची है। तदनुसार अद्धाच्छेदका अर्थ कालविभाग होता है। यह जघन्य और उत्कृष्ट भेदसे दो प्रकारका है। मोहनीय सामान्यका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है यह विदित है, इसलिए मोहनीय सामान्यका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद उक्तप्रमाण कहा है। इसमें सात हजार वर्ष आबाधाकालके भी सम्मिलित हैं, क्योंकि ऐसा नियम है कि कर्मका बन्ध होते समय स्थितिबन्धके अनुसार उसकी आबाधा पड़ती है। यदि अन्त कोड़ाकोडी सागरके भीतर स्थितिबन्ध होता है तो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा पडती है और सौ कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध होता है तो सौ वर्षप्रमाण आबाधा पड़ती है। आगे इसी अनुपातसे आबाधाकाल बढ़ता जाता है, इसलिए सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिबन्धके होने पर उसका आबाधाकाल सात हजार वर्षप्रमाण बतलाया है। विशेष खुलासा इस प्रकार है—किसी भी कर्मका बन्ध होने पर वह अपनी स्थितिके सब समयोंमें विभाजित हो जाता है। मात्र बन्ध समयसे लेकर प्रारम्भके कुछ समय ऐसे होते हैं जिनमें कर्मपुञ्ज नहीं प्राप्त होता। जिन समयोंमें कर्मपुज नहीं प्राप्त होता उन्हें आबाधा काल कहते हैं। इस आबाधाकालको छोडकर स्थितिके शेष समयोंमें उत्तरोत्तर विशेष हीन क्रमसे कर्मपुञ्ज विभाजित होकर मिलता है। उदाहरणार्थ मोहनीयकर्मका सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण स्थितिबन्ध होने पर बन्ध समयसे लेकर सात हजार वर्ष तक सब समय खाली रहते हैं। उसके बाद अगले समयसे लेकर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर तकके कालके जितने समय होते हैं, विवक्षित मोहनीयकर्मके उतने विभाग होकर सात हजार वर्षके बाद, प्रथम समयके बटवारेमें जो भाग आता है वह सबसे बडा होता है, उससे अगले समयके बटवारेमें जो भाग आता है वह उससे कुछ हीन होता है। इसी प्रकार सत्तर कोडाकोडी सागरके अन्तिम समय तक जानना चाहिए। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि यहाँ पर मोहनीयकी जो उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोडी सागर कही है वह सत्तर कोडाकोडी सागरके अन्तिम समयके बटवारेमें प्राप्त होनेवाले द्रव्यकी अपेक्षासे कही है। वस्तुतः आबाधाकालके बाद जिस समयके बटवारेमें जो द्रव्य आता है उसकी उतनी ही स्थिति जाननी चाहिए। स्थितिके अनुसार बटवारेका यह क्रम सर्वत्र जानना चाहिए। इस प्रकार मोहनीय कर्मके उत्कृष्ट अद्धाच्छेदका विचार किया। मोहनीयकर्मका जघन्य अद्धाच्छेद एक समयप्रमाण है। यह क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके अन्तिम समयमें सूक्ष्मलोभकी उदयस्थितिके समय प्राप्त होता है। मोहनीयकी उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद मोहनीय सामान्यके समान सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका

उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर है, क्योंकि ये दोनों बन्ध प्रकृतियाँ न होकर संक्रम प्रकृतियाँ हैं, इसलिए जिस जीवने मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके उसका काण्डकघात किये बिना अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया है उसके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें अन्तर्मुहूर्त कम मिथ्यात्वके सब निषेकोंका कुछ द्रव्य संक्रमणके नियमानुसार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व रूपसे संक्रमित हो जाता है, इसलिए इन दो प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण प्राप्त होता है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है, क्योंकि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके इन कर्मोंका इतना उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है। नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद एक आवलि कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। यद्यपि नौ नोकषाय बन्ध प्रकृतियाँ हैं पर बन्धसे इनकी उक्त प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति नहीं प्राप्त होती। किन्तु यह उत्कृष्ट अद्धाच्छेद संक्रमणसे प्राप्त होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिए कि जब सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होता है तब नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साका नियमसे बन्ध होता है। उस समय स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका बन्ध नहीं होता। इसलिए नपुंसकवेद आदि पाँच प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय भी सम्भव है, क्योंकि मान लीजिए किसी जीवने सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध प्रारम्भ किया और उस समय वह नपुंसकवेद आदिका भी बन्ध कर रहा है इसलिए वह जीव एक आवलिके बाद सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिको नपुंसकवेद आदिमें संक्रमित भी करने लगेगा। अतः सोलह कषायोंके बन्धकालके भीतर ही नपुंसकवेद आदिका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद बन जाता पर स्त्रीवेद आदिका उस समय तो बन्ध होता ही नहीं, इसलिए सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध कराकर और उससे निवृत्त होकर स्त्रीवेद आदि चारका बन्ध करावे और एक आवलि कम सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रमण कराके इनका उत्कृष्ट अद्धाच्छेद आवलि कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण प्राप्त करे। स्त्रीवेद आदि चार प्रकृतियोंकी कहीं कहीं पुण्य प्रकृतियोंके साथ परिगणना की जाती है। इसका बीज यही है। यह उत्कृष्ट अद्धाच्छेद है। इन प्रकृतियोंके जघन्य अद्धाच्छेदका विचार करने पर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषाय ये स्वोदयसे क्षय होनेवाली प्रकृतियाँ नहीं हैं, इसलिए जब इनकी अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें दो समय कालवाली एक निषेकस्थिति शेष रहती है तब इनका जघन्य अद्धाच्छेद होता है। सम्यक्त्व और लोभसंज्वलन इन दो का नियमसे स्वोदयसे ही क्षय होता है। तथा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद ये भी स्वोदयसे क्षयको प्राप्त हो सकती हैं अतः जब इनकी क्षपणाके अन्तिम समयमें एक समय कालवाली एक निषेकस्थिति शेष रहती है तब इनका जघन्य अद्धाच्छेद होता है। एक तो क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेद इनका क्षपकश्रेणिमें अपनी अपनी उदयव्युच्छित्तिके अन्तिम समयमें पूरा क्षपणा नहीं होता। दूसरे वहाँ इनके अपने अपने वेदककालके अन्तिम समयमें नवकबन्धके निषेकोंके साथ प्रथम स्थितिके निषेक भी शेष रहते हैं, इसलिए इनकी जघन्य स्थिति अपने अपने वेदककालके अन्तिम समयमें न कहकर अन्तमें जो नूतन बन्ध होता है उसके एक समय कम दो आवलिप्रमाण काल बीतने पर अन्तमें इन कर्मोंकी जघन्य स्थिति कही है। जो क्रोधसंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना मानसंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना मायासंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्त कम पन्द्रह दिन और पुरुषवेदकी अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण होती है। यही इनका जघन्य अद्धाच्छेद है। छह नोकषायोंके अन्तिम काण्डककी अन्तिम फालि संख्यात वर्षप्रमाण होती है इसलिए इनका जघन्य अद्धाच्छेद संख्यात वर्षप्रमाण कहा है।

सर्व-नोसर्वविभक्ति—सर्वस्थितिविभक्तिमें सब स्थितियाँ और नोसर्वस्थितिविभक्तिमें उनसे न्यून स्थितियाँ विवक्षित हैं। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें यह यथायोग्य घटित कर लेना चाहिए।

उत्कृष्ट-अनुत्कृष्टविभक्ति—सबसे उत्कृष्टस्थिति उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है और उससे न्यून स्थिति अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति है। ओघ और आदेशसे जहाँ जो विशेषता सम्भव हो उस प्रकारसे उसे जान लेना चाहिए।





जघन्य-अजघन्यविभक्ति—सबसे जघन्य स्थिति जघन्य स्थितिविभक्ति है और उससे अधिक स्थिति अजघन्य स्थितिविभक्ति है। मूल और उत्तर प्रकृतियोंमें इस बीजपदके अनुसार घटित कर लेना चाहिए।

सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुवविभक्ति—सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके अन्तिम समयमें होती है, अतः जघन्य स्थितिविभक्ति सादि और अध्रुव है। इसके पूर्व अजघन्य स्थितिविभक्ति होती है, इसलिए यह अनादि तो है ही। साथ ही यह अभव्यों की अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव भी है। तथा उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति कादाचित्क होती है इसलिए ये सादि और अध्रुव हैं। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके विषयमें इसीप्रकार जानना चाहिए। अर्थात् इनकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिविभक्ति सादि और अध्रुव होती है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्ति सादि विकल्पको छोड़कर तीन प्रकारकी होती है। कारण स्पष्ट है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ ही सादि हैं, इसलिए इनकी उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य ये चारों स्थितिविभक्तियाँ सादि और अध्रुव होती हैं। अब रही अनन्तानुबन्धीचतुष्क सो इसकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तियाँ कादाचित्क होनेसे सादि और अध्रुव हैं। तथा जघन्य स्थितिविभक्ति विसंयोजनाके बाद इसकी संयोजना होनेके प्रथम समयमें ही होती है, इसलिए यह भी सादि और अध्रुव है। किन्तु अजघन्य स्थितिविभक्ति विसंयोजनाके पूर्व अनादिसे रहती है तथा विसंयोजना के बाद पुनः संयोजना होनेपर भी होती है, इसलिए तो यह अनादि और सादि है। तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव भी है। इसप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अजघन्य स्थितिविभक्ति सादि आदिके भेदसे चारों प्रकारकी है। यह ओघ प्ररूपणा है। मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर योजना करनी चाहिए।

स्वामित्व—सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका स्वामी है। अवान्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके विषयमें इसी प्रकार स्वामित्व जानना चाहिए। यद्यपि यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके द्वितीयादि समयोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवालेके उत्कृष्ट स्थितिका एक भी निषेक नहीं गलता, इसलिए केवल बन्धके समय उत्कृष्ट स्थिति न मानकर अन्य समयोंमें भी उत्कृष्ट स्थिति मानी जानी चाहिए पर यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थिति कालप्रधान होती है और द्वितीयादि समयोंमें अधःस्थिति गलनाके द्वारा एक एक समय कम होता जाता है, इसलिए उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय ही उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति मानी गई है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका ऐसा प्रथम समयवर्ती वेदकसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है जिसने मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्व प्राप्त किया है। तथा कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति बाँधकर जो एक आवलिकालके बाद उसे नौ नोकषायोंमें संक्रान्त कर रहा है वह नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका स्वामी है। सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिविभक्ति क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए वह इसका स्वामी है। उत्तर-प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी क्षपणा करनेवाला जीव उसकी क्षपणाके अन्तिम समयमें उसकी जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामी है। इसी प्रकार सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और छह नोकषायकी जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामी अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयवर्ती जीवको जानना चाहिए। मात्र सम्यग्मिथ्यात्वका यह जघन्य स्वामित्व अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें भी बन जाता है। तथा तीन वेदकी जघन्य स्थितिविभक्तिका स्वामी स्वोदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ा हुआ अन्तिम समयवर्ती जीव है। यह ओघसे स्वामित्व कहा है। मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर यह स्वामित्व घटित कर लेना चाहिए। जहाँ जिन प्रकृतियोंकी क्षपणा सम्भव हो वहाँ उसका विचार कर और जहाँ क्षपणा सम्भव न हो वहाँ अन्य प्रकारसे जघन्य स्वामित्व घटित करना चाहिए। तथा उत्कृष्ट स्वामित्वमें भी अपनी अपनी विशेषताको जानकर यह ले आना चाहिए।

काल—उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है, इसलिए सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। एक बार उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होकर पुनः उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होनेमें कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और यदि कोई जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें परिभ्रमण करने लगा तो उसके अनन्त काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध नहीं होगा इसलिए यहां अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण जानना चाहिए। जो नोकषायोंमें नपुंसकवेद अरति शोक, भय और जुगुप्साका बन्ध सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके साथ भी सम्भव है और इसलिए इनकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है पर शेष चार नोकषायोंका बन्ध सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय सम्भव नहीं है इसलिए इनकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण है। तथा इन नौ नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय है क्योंकि सोलह कषायोंकी एक समयके अन्तरसे एक समय आदि कम अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर एक आवलिके बाद उसका उसी क्रमसे नौ नोकषायोंमें संक्रमण करने पर इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है। तथा उत्कृष्ट काल सोलह कषायोंके समान अनन्त काल है यह स्पष्ट ही है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति जो मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला जीव अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें होती है इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा जो जीव उपशमसम्यक्त्वके साथ इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्तमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है और जो बीचमें सम्यग्मिथ्यात्वके साथ दो छ्यासठ सागर काल तक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहता है उसके साधिक दो छ्यासठ सागर काल तक इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिविभक्ति देखी जाती है इसलिए इनकी अनुत्कृष्टस्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। सामान्यसे मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपक सूक्ष्मसाम्परायके अन्तिम समयमें होती है इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिविभक्ति अभव्योंकी अपेक्षा अनादि अनन्त और भव्योंकी अपेक्षा अनादि-सान्त है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा छह नोकषायोंके सिवा शेष सब प्रकृतियोंकी जघन्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। मिथ्यात्व बारह कषाय और तीन वेदकी अजघन्य स्थितिविभक्तिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त है क्योंकि इनकी जघन्य स्थिति क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है इसलिए यह काल बन जाता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति भी अपनी अपनी क्षपणाके अन्तिम समयमें होती है, इसलिए इनकी अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर प्रमाण है। कारण का निर्देश पहले कर ही आये हैं। अनन्तानुबन्धी विसंयोजना प्रकृति है इसलिए इसकी अजघन्य स्थितिके अनादि-अनन्त अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प बन जाते हैं। इनमें सादि-सान्त अजघन्य स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है क्योंकि संयोजना होने पर पुनः अन्तर्मुहूर्तमें इसकी विसंयोजना हो सकती है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है, क्योंकि विसंयोजनाके बाद संयोजना होने पर इतने काल तक जीव इसकी विसंयोजना न करे यह सम्भव है। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थिति अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय होती है और उसमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है इसलिए इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा अजघन्य स्थिति इसके पहले सर्वदा बनी रहती है और अभव्योंके इसका कभी अभाव नहीं होता इसलिए इनकी अजघन्य स्थितिका काल अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त कहा है। गति आदि मार्गणाओंमें इसी प्रकार अपनी अपनी विशेषता जानकर यह काल घटित कर लेना चाहिए।

अन्तर—सामान्यसे मोहनीयका एक बार उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर पुनः वह अन्तर्मुहूर्तके बाद हो सकता है और एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें परिभ्रमण करता रहे तो अनन्त कालके अन्तरसे होता है इसलिए इसकी

उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। तथा इसकी अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समयके अन्तरसे और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे होती है, क्योंकि इसकी उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिए इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका इसी प्रकार अन्तर काल जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे भी हो सकती है और उपार्ध पुद्गल परिवर्तनके अन्तरसे भी हो सकती है, इसलिए इनकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध-पुद्गल परिवर्तनप्रमाण कहा है। तथा इनकी उत्कृष्ट स्थितिका काल एक समय होनेसे इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका अन्तर एक समय होता है और जो जीव अर्धपुद्गल परिवर्तनके प्रारम्भमें और अन्तमें इनकी सत्ता प्राप्त कर मध्यके उपार्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक इनकी सत्तासे रहित होता है उसके उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तर हो सकता है, इसलिए अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय मिथ्यात्वके समान घटित कर लेना चाहिए। तथा जो वेदकसम्यग्दृष्टि इनकी विसयोजना कर मध्यमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक इनके बिना रहता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उक्त अन्तर देखा जाता है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर कहा है। नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर तथा अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य अन्तर मिथ्यात्वके समान ही है। मात्र इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके उत्कृष्ट अन्तरमें भेद है। बात यह है कि पाँच नोकषायोंका स्थितिबन्ध सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय भी सम्भव है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर तो अन्तर्मुहूर्त बन जाता है पर चार नोकषायोंका बन्ध सोलह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिबन्धके समय सम्भव नहीं है, इसलिए इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर एक आवलि प्राप्त होता है। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीय सामान्यकी जघन्य स्थिति क्षपकश्रेणिके अन्तिम समयमें प्राप्त होती है, इसलिए इसकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका अन्तर काल नहीं है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका भी अन्तर काल नहीं है। इसकी अजघन्य स्थितिका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति उद्वेलनाके समय और क्षपणाके समय होती है, इसलिए इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है, क्योंकि जो जीव इसकी उद्वेलना करके और दूसरे समयमें सम्यक्त्वके साथ पुन इसकी सत्ता प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्तमें इसकी क्षपणा करता है उसके यह अन्तर-काल बन जाता है। तथा इसका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि जो उपार्ध पुद्गल परिवर्तनके प्रारम्भमें इसकी सत्ता प्राप्त करके मध्य कालमें इसकी सत्तासे रहित रहता है और उपार्ध पुद्गल परिवर्तनके अन्तमें पुन॰ इसकी सत्ता प्राप्त कर क्षपणा करता है उसके इसकी जघन्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण देखा जाता है। इसकी अजघन्य स्थितिका अन्तर अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है। अनन्तानुबन्धी विसयोजना प्रकृति है, इसलिए इसकी जघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण प्राप्त हो जाता है इसलिए वह उक्त प्रमाण कहा है। तथा इसकी विसयोजना होकर कम से कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक इसका अभाव रहता है, इसलिए इसकी अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागरप्रमाण कहा है। गति आदि मार्गणाओंमें अपने अपने स्वामित्वको जानकर इसी प्रकार यह अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिए।

भंगविचय—जो उत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिवाले होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिवाले नहीं होते। इसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा

भी यह अर्थपद जानना चाहिए। इस अर्थपदके अनुसार १ कदाचित् सब जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिसे रहित हैं, २ कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिसे रहित हैं और एक जीव उत्कृष्ट स्थितिवाला है, ३ कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिसे रहित हैं और बहुत जीव उत्कृष्ट स्थितिवाले हैं ये तीन भङ्ग होते हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा १ कदाचित् सब जीव मोहनीय की अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं, २ कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और एक जीव अनुत्कृष्ट स्थितिसे रहित है ३ कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिवाले हैं और बहुत जीव अनुत्कृष्ट स्थितिसे रहित हैं ये तीन भंग होते हैं। उत्तर २८ प्रकृतियोंकी अपेक्षा ये ही भङ्ग जानने चाहिए। मोहनीय सामान्य की जघन्य और अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा भी जो उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तीन तीन भङ्ग कहे हैं उसी प्रकार तीन तीन भंग जानने चाहिए। २८ उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भी इसी प्रकार भङ्ग घटित कर लेने चाहिए। तात्पर्य यह है कि जो उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तीन भङ्ग कहे हैं वे सर्वत्र जघन्य स्थितिकी अपेक्षा तीन भङ्ग जानने चाहिए और जो अनुत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा तीन भङ्ग कहे हैं वे सर्वत्र अजघन्य स्थितिकी अपेक्षा तीन भङ्ग जानने चाहिए। गति आदि मार्गणाओंमें भी अपनी अपनी विशेषताको जानकर ये भङ्ग ले आने चाहिए।

भागाभाग—मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। इसी प्रकार मोहनीयकी छब्बीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। मोहनीय सामान्य और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका इसी प्रकार भागाभाग है। अर्थात् जघन्य स्थितिवाले अनन्तवें भागप्रमाण हैं और अजघन्य स्थितिवाले अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी संख्या आदिको जानकर यह भागाभाग घटित कर लेना चाहिए।

परिमाण—मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव अनन्त हैं। इसी प्रकार छब्बीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षासे यह परिमाण जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं। मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात और अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्त हैं। छब्बीस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार परिमाण जानना चाहिए। सम्यक्त्वकी अपेक्षा जघन्य स्थितिवाले जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य और अजघन्य स्थितिवाले जीव असंख्यात हैं। गति आदि मार्गणाओंमें अपने अपने परिमाणको और स्वामित्वको जानकर यह घटित कर लेना चाहिए।

क्षेत्र—मोहनीयकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है और अनुत्कृष्ट व अजघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र सर्व लोकप्रमाण है। मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार क्षेत्र जानना चाहिए। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। गति आदि मार्गणाओंमें अपने अपने स्वामित्वको व क्षेत्रको जानकर यह घटित कर लेना चाहिए।

स्पर्शन—मोहनीय सामान्यकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवालोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण विहारवत्स्वस्थानकी अपेक्षा अतीत स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका सर्व लोकप्रमाण स्पर्शन है। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका यही स्पर्शन है। इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थिति-

वालोंका यह स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। तथा अन्य आचार्यों के अभिप्रायसे यह त्रसनालीके कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण है। कारणका निर्देश पृ ३६८ के विशेषार्थमें किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्तिके प्रथम समयमें सम्भव है और ऐसे जीवोंका स्पर्शन त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है, इसलिए यह स्पर्शन उक्त प्रमाण कहा है। इस अपेक्षासे वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका उत्कृष्टके समान स्पर्शन तो बन ही जाता है। साथ ही मारणान्तिक और उपपादकी अपेक्षा सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन भी बन जाता है इसलिए यह उक्तप्रमाण कहा है। मोहनीयकी जघन्य स्थिति क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होती है, इसलिए इसकी जघन्य स्थितिवालोंका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन है और मोहनीयकी सत्तावाले जीव सर्व लोकमें पाये जाते हैं, इसलिए इसकी अजघन्य स्थितिवालोंका सर्वलोक प्रमाण स्पर्शन कहा है। उत्तर प्रकृतियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन अपने अनुत्कृष्टके समान है यह स्पष्ट ही है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य और अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन अनुत्कृष्टके समान है यह भी स्पष्ट है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थिति देवोंके विहारादिके समय भी सम्भव है इसलिए इसवाले जीवोंका स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकी अपेक्षा त्रसनालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण कहा है। इसके अजघन्य स्थितिवालोंका स्पर्शन सर्वलोकप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषताको जानकर इसी प्रकार स्पर्शन घटित कर लेना चाहिए।

काल—नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका एक समय बन्ध करके दूसरे समयमें न करें यह सम्भव है और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक करते रहें यह भी सम्भव है, इसलिए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। तथा इसकी अनुत्कृष्ट स्थितिका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी छब्बीस उत्तर-प्रकृतियोंकी अपेक्षा यह काल इसी प्रकार जानना चाहिए। मात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि मोहनीय-की उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होते हैं। तथा इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि क्षपकश्रेणिकी प्राप्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा इसकी अजघन्य स्थितिवालोंका काल सर्वदा है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, बारह कषाय और तीन वेदवाले जीवोंका यह काल इसी प्रकार है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। कारण स्पष्ट है। इनकी अजघन्य स्थितिवालोंका काल सर्वदा है। छह नोकषायोंकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि एक स्थितिकाण्डकघातमें इतना काल लगता है और उत्कृष्ट काल सर्वदा है। गति आदि मार्गणाओंमें अपनी अपनी विशेषता जानकर यह काल घटित कर लेना चाहिए।

अन्तर—मोहनीय सामान्य और अट्ठाईस उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है, क्योंकि एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिकी प्राप्ति सम्भव है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके बाद उसका पुनः बन्ध होनेमें अधिकसे अधिक इतना अन्तरकाल प्राप्त होता है। इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिवालोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। मोहनीयकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अजघन्य स्थितिवालोंका अन्तरकाल नहीं है। मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, आठ कषाय और छह नोकषायोंकी अपेक्षा यह अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थिति

जावोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है, क्योंकि सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवालोंका और सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जानेवाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है इसलिए यह उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है क्योंकि इन प्रकृतियोंके उपशमसे इतने कालके अन्तरसे क्षपकश्रेणिपर आरोहण करना सम्भव है। लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है, क्योंकि क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिवालोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्ष है, क्योंकि इन वेदवालोंका इतने कालके अन्तरसे क्षपकश्रेणि पर आरोहण करना सम्भव है। इन सब प्रकृतियोंकी अजघन्य स्थितिवालोंका अन्तर काल नहीं है यह स्पष्ट ही है। यदि आदि मार्गणाओं में अपनी अपनी विशेषता जानकर यह अन्तरकाल ले आना चाहिए।

सन्निकर्ष—मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता होती भी है और नहीं भी होती। यदि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव है या जिन्होंने इन दोनोंकी उद्वेलना कर दी है उनके सत्ता नहीं होती, शेष जीवोंके होती है। जिनके सत्ता होती है उनकी इनकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यात्व गुणस्थानमें होती है और इनकी उत्कृष्ट स्थिति वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्तिके प्रथम समयमें होती है इसलिए मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके इन दोनोंकी उत्कृष्ट स्थितिका निषेध किया है। इनकी अनुत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर एक स्थितिपर्यन्त होती है। कारण स्पष्ट है। इतनी विशेषता है कि अन्तिम जघन्य उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिमें जितने निषेक होते हैं उतने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके साथ इन दोनों प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके सन्निकर्ष विकल्प नहीं होते। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थिति भी होती है और अनुत्कृष्ट स्थिति भी होती है। यदि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करते समय सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कमसे कम एक समय और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कम होती है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद हास्य और रतिकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है, क्योंकि उस समय इनका बन्ध नहीं होता जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा कमसे कम अन्तर्मुहूर्त कम होती है और इस प्रकार उत्तरोत्तर कम होती हुई इनकी अनुत्कृष्ट स्थिति अन्तःकोड़ाकोड़ीके प्रमाण तक प्राप्त हो सकती है। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके समय शेष पाँच नोकषायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। यदि उस समय सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होकर एक आवलि कम उनका पाँच नोकषायोंमें संक्रमण हो रहा है तो उत्कृष्ट स्थिति होती है अन्यथा अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम बीस कोड़ाकोड़ी सागर तक सम्भव है। इस प्रकार मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको प्रधान करके सन्निकर्षका विचार किया।

सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थितिवालेके मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम होती है। उस समय सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। कारण स्पष्ट है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कम तक होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके इसी प्रकार सन्निकर्ष विकल्प जानना चाहिए। मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके पहले सन्निकर्ष कह आये हैं उसी प्रकार सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा सन्निकर्ष जानना चाहिए।

स्त्रीवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवालेके मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कम तक होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मि-

थ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एक स्थिति तक होती है। मात्र इनकी अन्तिम जघन्य स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिको इन सन्निकर्ष विकल्पोंमेंसे कम कर देना चाहिए। सोलह कषायोंकी नियमसे अनुत्कृष्ट स्थिति होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। पुरुषवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्त:कोडाकोडी सागर तक होती है। हास्य और रतिकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। स्त्रीवेदके बन्धके समय हास्य और रतिका बन्ध होता है तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्त:कोडाकोडी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। स्त्रीवेदके बन्धके समय इनका बन्ध होता है तो उत्कृष्ट होती है, अन्यथा अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्यका असंख्यातवाँ भागकम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है। नपुंसकवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो एक समय कमसे लेकर पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है। भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। पुरुषवेदकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए। हास्य और रतिकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके भी इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए। मात्र इसके स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा एक समय कम आदि न होकर अन्तर्मुहूर्त आदि कम होती है। कारणकी जानकारीके लिए पृष्ठ ४७३ देखो।

नपुंसकवेदकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीवके मिथ्यात्वकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्यके असंख्यातवें भागतक कम होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है, जो अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर एक स्थिति तक होती है। सोलह कषायोंकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय कमसे लेकर एक आवलि कम तक होती है। स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी स्थिति नियमसे अनुत्कृष्ट होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कमसे लेकर अन्त कोडाकोडी सागर तक होती है। हास्य और रतिकी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है जो अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर अन्त कोडाकोडी सागर तक होती है। अरति और शोककी स्थिति उत्कृष्ट भी होती है और अनुत्कृष्ट भी होती है। अनुत्कृष्ट स्थिति अपनी उत्कृष्टकी अपेक्षा एक समय कमसे लेकर पल्यका असंख्यातवाँ भागकम बीस कोडाकोडी सागर तक होती है। भय और जुगुप्साकी स्थिति नियमसे उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिको मुख्य करके सन्निकर्ष जानना चाहिए। यहाँ जो विशेषता है उसे ४८३ पृष्ठसे जान लेनी चाहिए।

मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालेके अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सत्त्व नहीं होता, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके समय मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति होती है और अनन्तानुबन्धीकी इससे पूर्व विसंयोजना हो जाती है। शेष कर्मों की स्थिति नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी अधिक होती है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारकी सत्ता नहीं होती। शेष कर्मों की अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचारकी सत्ता है भी और नहीं भी है। उद्वेलनाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवाले जीवके सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं है शेषकी है और क्षपणाके समय सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचारकी सत्ता नहीं होती, सम्यक्त्वकी होती है। जब इनकी सत्ता होती है तो इनकी नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी होती है। इन छह प्रकृतियोंके सिवा शेष प्रकृतियोंकी नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है।

अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिवालेके मिथ्यात्व आदि सब प्रकृतियोंकी नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। मात्र अनन्तानुबन्धी मान आदि तीनकी जघन्य स्थिति होती है। इसी प्रकार

अनन्तानुबन्धी मान आदि तीनकी जघन्य स्थिति की मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिवालेके चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी नियमसे अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। अप्रत्याख्यानावरण मान आदि तीन और प्रत्याख्यानावरण चतुष्ककी नियमसे जघन्य स्थिति होती है। इसी प्रकार इन सात कषायोंकी जघन्य स्थितिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिवालेके सात नोकषाय और तीन संज्वलनोंकी नियमसे अजघन्य संख्यातगुणी स्थिति होती है और लोभसंज्वलनकी अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिवालेके इसी प्रकार सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिवालेके तीन संज्वलनोंकी अजघन्य संख्यात गुणी स्थिति होती है और लोभ संज्वलनकी अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है।

हास्यकी जघन्य स्थितिवालेके तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी अजघन्य संख्यातगुणी स्थिति होती है और लोभसंज्वलनकी अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। तथा पाँच नोकषायोंकी जघन्य स्थिति होती है। इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी जघन्य स्थितिकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए।

क्रोधसंज्वलनकी जघन्य स्थितिवालेके दो संज्वलनकी अजघन्य संख्यातगुणी और लोभसंज्वलनकी अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिवालेके मायासंज्वलनकी अजघन्य संख्यातगुणी और लोभसंज्वलनकी अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। मायासंज्वलनकी जघन्य स्थिति-वालेके लोभसंज्वलनकी अजघन्य असंख्यातगुणी स्थिति होती है। लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिवालेके अन्य प्रकृतियाँ नहीं होतीं।

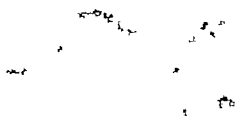
भाव—मूल और उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा सर्वत्र औदयिक भाव है।

अल्पबहुत्व—सामान्यसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिवाले जीव थोड़े हैं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव करते हैं। इनसे अनुत्कृष्ट स्थितिवाले अनन्तगुणे हैं। कारण स्पष्ट है। जघन्यकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिवाले सबसे थोड़े हैं, क्योंकि क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक जीवके अन्तिम समयमें मोहनीयकी जघन्य स्थिति होती है। इनसे अजघन्य स्थितिवाले जीव अनन्तगुणे हैं। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा यहां स्थिति अल्पबहुत्वका विचार किया है जिसका ज्ञान प्रस्तावनासे हो सकता है, इसलिए यहांपर नहीं दिया जाता है।

इस प्रकार कुल तेईस अनुयोगद्वारोंका आश्रय लेकर स्थितिविभक्तिका विचार करके आगे भुजगार, पदनिक्षेप वृद्धि और स्थितिसत्कर्मस्थान इन अधिकारोंका अवलम्बन लेकर विचार करके स्थितिविभक्ति समाप्त होती है। इन अधिकारोंकी विशेष जानकारीके लिए मूलग्रन्थका स्वाध्याय करना आवश्यक है।

विषय-सूची





कसायपाहुडस्स

ट्ठिदि विहत्ती

तदियो अत्थाहियारो

* जे

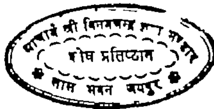
§ १.
चि मणिद
ण उप्पज्जदि

* अब
अर्थपद कहते

§ १.

यह इसका

ज्ञान सुतपूर्वक
लिये उनके





सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

उत्तरपयडिट्ठिदिविहत्ती णाम विदिओ अत्थाहियारो

* जे भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिद-अवत्तव्वया तेसिमट्ठपदं।

§ १ किमट्ठपदं णाम? भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदावत्तव्वयाणं सरूवं त परूवेमि त्ति भणिदं होदि। तं किमट्ठं वुच्चदे? अणवगयभुजगारसरूवस्स भुजगारविसओ बोहो सुहेण ण उप्पज्जदि त्ति तदुप्पायणट्ठं वुच्चदे।

---

* अब जो भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य पद हैं उनका अर्थपद कहते हैं।

§ १ शंका—यहाँ अर्थपद से क्या तात्पर्य है?

समाधान—भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यका जो स्वरूप है उसे कहते हैं यह इसका तात्पर्य है।

शंका—भुजगार आदिका स्वरूप किसलिये कहते हैं?

समाधान—जिन्होंने भुजगार आदि चारोंका स्वरूप नहीं जाना है उन्हें भुजगार विषयक ज्ञान सुखपूर्वक नहीं उत्पन्न होता है, अतः भुजगारादि विषयक ज्ञानके सुखपूर्वक उत्पन्न करानेके लिये उनके स्वरूपका कथन करते हैं।

* जत्तियाओ अस्सि समए ट्ठिदिविहत्तीओ उस्सक्काविदे अणंतर-विदिक्कंते समए अप्पदराओ बहुदरविहत्तिओ एसो भुजगारविहत्तिओ ।

२. 'अस्सिं' समए अस्मिन् वर्तमानसमये 'जत्तियाओ' यावन्त्यः 'ट्ठिदिविहत्तीओ' स्थितिविभक्तयः स्थितिविकल्पाः इति यावत् । 'उस्सक्काविदे' तासूत्कर्षितासु वर्द्धितासु इत्यर्थः। 'अणंतरविदिक्कंते समए' अनन्तरव्यतिक्रान्ते समये । अप्पदराओ अल्पतराः स्थितयो यदि भवन्ति । बहुदरविहत्तिओ स बहुतरस्थितिविकल्पो जीवः । एसो भुजगारविहत्तिओ । स एष जीवो भुजगारविभक्तिः । अणंतरादीदट्ठिदीहिंतो जदि वट्टमाणसमए बहुआओ ट्ठिदीओ बंधदि तो भुजगारविहत्तिओ त्ति भणिदं होदि ।

* ओसक्काविदे बहुदराओ विहत्तीओ एसो अप्पदरविहत्तिओ ।

§ ३. 'बहुदराओ विहत्तीओ' अनन्तरव्यतिक्रान्ते समये बहुस्थितिविकल्पेषु व्यवस्थितेषु 'ओसक्काविदे' वर्तमानसमये स्थितिकांडघातेन अधःस्थितिगलनेन वा अपकर्षितेषु । एसो अप्पदरविहत्तिओ एषः अल्पतरविभक्तिकः ।

* ओसक्काविदे [उस्सक्काविदे वा] तत्तियाओ चेव विहत्तीओ एसो अवट्ठिदविहत्तिओ ।

§ ४. ओसक्काविदे उस्सक्काविदे वा जदि तत्तियाओ तत्तियाओ चेव ट्ठिदिबंधवसेण

---

* इस समयमें जितनी स्थितिविभक्तियां हैं उनके, अनन्तर व्यतीत हुए समयमें अल्पतर स्थितिविभक्तियोंको उत्कर्षित करके, बांधने पर वह बहुतरविभक्तिवाला जीव भुजगारस्थितिविभक्तिवाला होता है ।

§ २ 'अस्सिं समए' का अर्थ 'इस वर्तमान समयमें' है । 'जात्तियाओ' का अर्थ 'जितनी' है । 'ट्ठिदिविहत्तीओ' का अर्थ स्थितिविभक्तियाँ अर्थात् स्थितिविकल्प है । 'उस्सक्काविदे' का अर्थ 'उनके उत्कर्षित करने पर अर्थात् बढ़ाने पर' है । 'अणतरविदिक्कते समए' का अर्थ 'अनन्तर व्यतीत हुए समयमें' है । 'अप्पदराओ' अर्थात् 'अल्पतर स्थितियाँ' यदि होती हैं । तो वह बहुदरविहत्तिओ' अर्थात् 'बहुत स्थितिविकल्पवाला जीव' है । 'एसो भुजगारविहत्तिओ' अर्थात् यह भुजगारविभक्ति-वाला जीव है । इसका यह तात्पर्य है कि अनन्तर अतीत समयसे यदि वर्तमान समयमें जीव बहुत स्थितियोंका बन्ध करता है तो वह भुजगारविभक्तिवाला कहा जाता है ।

* जो अनन्तर अतीत समयमें बहुतर स्थितिविभक्तियोंमें रहकर पुनः उन्हें अपकर्षित करके इस वर्तमान समयमें अल्पतर स्थितिविभक्तियोंको प्राप्त होगया वह जीव अल्पतर स्थितिविभक्तिवाला होता है ।

§ ३ 'बहुदराओ विहत्तीओ' अर्थात् जो अनन्तर अतीत हुए समयमें बहुत स्थितिविकल्पोंमें रहा वह जब 'ओसक्काविदे' अर्थात् इस वर्तमान समयमें स्थितिकाण्डकघात या अधःस्थिति-गलनाके द्वारा बहुत स्थितियोंको घटाकर अल्पतर स्थितिविभक्ति कर देता है तब वह जीव अल्पतर स्थितिविभक्तवाला होता है ।

* अपकर्षित करने पर या उत्कर्षित करने पर यदि उतनी ही स्थितियां रहें तो वह जीव अवस्थितविभक्तिवाला होता है ।

§ ४. अपकर्षित करने पर या उत्कर्षित करने पर यदि स्थितिबन्धके कारण उतनी ही स्थिति-

द्विदिविहत्तीओ होदि तो एसो अवट्ठिदविहत्तिओ णाम।

* अविहत्तियादो विहत्तियाओ एसो अवत्तव्वविहत्तिओ।

§ ४. णिस्संतकम्मिओ होदूण जदि स संतकम्मिओ होदि तो अवत्तव्वविहत्तिओ होदि वड्ढिहाणिअवट्ठाणाणमभावादो। तदभावो वि पुव्वं संतकम्मस्स अभावादो; पुव्विल्लसंतकम्ममवेक्खिय द्विदिवड्ढिहाणिअवट्ठाणाणं च तेण विणा संभवो त्ति; विरोहादो। तम्हा तं अवेक्खिय अवत्तव्वं सिद्धं; अण्णहा अवत्तव्वसद्देण वि तस्सावत्तव्वप्पसंगादो।

* एदेण अट्ठपदेण।

§ ६. एदमट्ठपदं काऊण उवरि भण्णमाणअणियोगद्दाराणं परूवणं कस्सामो।

§ ७. एत्थ ताव मंदबुद्धिजणाणुग्गहट्ठमुच्चारणा वुच्चदे। तत्थ तेरस अणियोग-

---

विभक्तियाँ होती हैं जितनी कि पिछले समयमें थीं तो वह जीव अवस्थितविभक्तिवाला होता है।

* जो अविभक्तिकसे पुनः विभक्तिवाला होता है वह अवक्तव्यविभक्तिवाला जीव है।

§ ५. जो निःसत्त्वकर्मवाला होकर यदि पुनः सत्कर्मवाला होता है तो वह अवक्तव्यविभक्तिवाला जीव है, क्योंकि इसके वृद्धि, हानि और अवस्थानका अभाव है। वृद्धि, हानि और अवस्थानका अभाव भी पहले सत्तामें स्थित कर्मोंके अभावसे होता है क्योंकि जो वृद्धि, हानि और अवस्थान पहले सत्तामें स्थित कर्मोंकी अपेक्षासे पाये जाते थे उनका सत्तामें स्थित कर्मोंके बिना पाया जाना सम्भव नहीं है। अन्यथा विरोध आता है। इसलिये उक्त अपेक्षासे अवक्तव्य विकल्प है यह बात सिद्ध हुई, अन्यथा अवक्तव्य शब्दसे भी उसके अवक्तव्यपनेका प्रसंग प्राप्त होता है। अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे यदि अवक्तव्य भंग न माना जाय तो उसे 'अवक्तव्य' इस शब्दके द्वारा भी नहीं कह सकेंगे।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितिसत्त्वकी अपेक्षा भुजगार आदिका विचार किया गया है, अतः इसके अनुसार भुजगार आदिके निम्न लक्षण प्राप्त होते हैं—जिस जीवके अनन्तर अतीत समयमें अल्प स्थिति है वह यदि वर्तमान समयमें बन्ध या संक्रमके द्वारा उससे अधिक स्थितिको प्राप्त करता है तो वह भुजगार स्थितिविभक्तिवाला जीव कहा जाता है। जिसके अनन्तर अतीत समयमें अधिक स्थिति है वह यदि स्थितिघात या अधःस्थितिगलना के द्वारा वर्तमान समयमें कम स्थिति कर लेता है तो वह अल्पतर स्थितिविभक्तिवाला जीव कहा जाता है। जिस जीवके स्थितिकी घटाबढ़ी होते हुए भी अनन्तर समयसे प्रथमादि समयोंके समान द्वितीयादि समयोंमें स्थिति बनी रहती है वह जीव अवस्थित स्थितिविभक्तिवाला कहा जाता है। तथा जो निःसत्त्वकर्मवाला होकर पुनः स्थितिसत्कर्मको प्राप्त करता है वह अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाला कहा जाता है। प्रकृत अनुयोगद्वारमें इन्हींकी अपेक्षा मोहनीयके अवान्तर भेदोंकी स्थितिका विचार किया गया है।

* इस अर्थपदके अनुसार।

§ ६. इस अर्थपदको करके आगे कहे जानेवाले अनुयोगद्वारोंका कथन करते हैं।

§ ७. अब यहाँ मन्दबुद्धि जनोंपर अनुग्रह करनेके लिये उच्चारणाका कथन करते हैं—

द्दाराणि णादव्वाणि भवंति–समुक्कित्तणा सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो अप्पाबहुए त्ति। समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अत्थि भुजगार-अप्पदर–अवट्ठिदविहत्तिया। सम्मत्त सम्मामि० अणंताणु०चउक्काणमेवं चेव। णवरि अत्थि अवत्तव्वं पि। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरि०पज्ज० पंचिंदियतिरिक्खजोणिणी-मणुसतिय-देव० भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०-पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि०-ओरालिय०–वेउव्विय०–तिण्णिवेद-चत्तारिक०-असंजद०-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०भवसि०-सण्णि-आहारि त्ति।

§ ८. पंचिं०तिरिक्खअपज्जत्त० छव्वीसं पयडीणमोघं। सम्मत्त-सम्मामि० अत्थि अप्पदरं चेव। अणंताणु०चउक्क० अव्वत्तव्वं णत्थि। एवं मणुसअपज्ज० सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय–पंचिं०अपज्ज०-सव्वपंचकाय०–तसअपज्जत्त-ओरालियमिस्स०-वेउव्विय-मि०-कम्मइय०मदि-सुद०-विहंग०-मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति।

भुजगार स्थितिविभक्तिमें तेरह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तियोंके धारक जीव हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका कथन इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्य भग भी है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंच, पचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त, पचेन्द्रियतिर्यंच-योनिमती, सामान्य मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार-स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, काययोगी, औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी, तीनों वेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, सज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषाय इनका क्षय हो जाने के पश्चात् पुन' इनकी उत्पत्ति नहीं होती, अत इनकी स्थितिमें ओघसे भुजगार अल्पतर और अवस्थित ये तीन विभक्तियाँ ही बनती हैं। किन्तु अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसयोजना हो जानेके पश्चात् पुन उत्पत्ति सम्भव है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना हो जानेपर भी उनका सत्त्व पुन प्राप्त हो जाता है, अत इन छह प्रकृतियोंमें ओघसे भुजगार आदि चारों विभक्तियाँ बन जाती हैं। मूल में जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें ओघके समान व्यवस्था बन जाती है, अत उनकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है।

§ ८ पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भग ओघके समान है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पतर ही है और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्य नहीं है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना।

§ ९. आणदादि जाव उवरिमगेवज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अत्थि अप्प० जीवा। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि अवत्तव्व पि अत्थि। सम्मत्त-सम्मामि० ओघ एव सुक्कले०। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० सव्वपयडीणं अत्थि अप्प० जीवा। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-आभिणि०-सुद०-ओहि० मणपज्ज० संजद सामाइय-छेदो०-परिहार-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय० वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति। अभव० छव्वीसं पयडीणमत्थि भुज०-अप्प०-अवट्ठि०विह०।

एवं समुक्कित्तणाणुगमो समत्तो

विशेषार्थ—पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष छब्बीस प्रकृतियोंकी प्ररूपणाको ओघके समान कहा है। इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार ओघसे मिथ्यात्व आदिकी स्थितियोंमें भुजगार आदिका कथन किया है उसीप्रकार मनुष्य और तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना तथा संयोजना नहीं होती अतः इनके अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य भंग नहीं पायाजाता। तथा इनके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें मिथ्यात्वका संक्रमण नहीं होता, अतः इनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक अल्पतर भंग ही पाया जाता है। इसी प्रकार मूलमें और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी सब प्रकृतियोंकी यही व्यवस्था जाननी चाहिये। यद्यपि उनमें कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें मिथ्यात्व और सासादन ये दो गुणस्थान होते हैं और औदारिकमिश्र आदि कुछ ऐसी मार्गणाएँ हैं जिनमें मिथ्यात्व, सासादन और अविरतसम्यग्दृष्टि ये तीन गुणस्थान होते हैं तो भी इतने मात्रसे उन मार्गणाओंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिके होनेमें कोई अन्तर नहीं आता। इसका विशेष खुलासा स्वामित्व अनुयोगद्वारमें किया ही है।

§ ९. आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिके धारक जीव हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका अवक्तव्य भंग भी है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिविभक्तिके धारक जीव हैं। इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी अपगतवेदवाले, अकषायी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्ति के धारक जीव हैं।

विशेषार्थ—आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी जो स्थिति होती है वह उत्तरोत्तर कमती ही होती जाती है, बन्ध या संक्रमसे उसमें वृद्धि नहीं होती, अतः इन देवोंके उक्त कर्मोंकी एक अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है। किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी स्थितिमें अल्पतर और अवक्तव्य ये दो भंग होते हैं। बात यह है कि उक्त स्थानोंमें मिथ्यादृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं और जिन्होंने

*** सामित्तं। मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदविहत्तिओ को होदि?**

§ १० सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

*** अण्णदरो णेरइयो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा।**

§ ११. भुज० अवट्ठिद० मिच्छाइट्ठिस्सेव। अप्पद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा।

*** अवत्तव्वओ णत्थि।**

§ १२. मिच्छत्तसंतकम्मे णिस्संतभावमुवगए पुणो तस्संतकम्मस्सुप्पत्तीए अभावादो।

सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है वे मिथ्यादृष्टि भी हो सकते हैं। अब यदि किसी सम्यग्दृष्टि देवने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की और वह कालान्तरमें मिथ्यादृष्टिहो गया हो तो उसके अनन्तानुवन्धी चतुष्कका अवक्तव्य भग प्राप्त हो जाता है और शेष देवोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अल्पतर भंग रहता है। तथा यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना भी होती है, अत इन दोनो प्रकृतियोंके ओघके समान भुजगार आदि चारों भग बन जाते हैं। इस प्रकार शुक्ललेश्यामें जानना चाहिये। तथा अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके सब प्रकृतियोंकी स्थितिमें वृद्धि नहीं होती, अत सब प्रकृतियोंकी स्थितिका एक अल्पतर भग ही है। इसी प्रकार मूलमें और जितनी मार्गणाए गिनाई हैं उनमें भी जानना चाहिये। जिस जीवने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है वह सासादनमें भी जाता है और ऐसे जीवके सासादनके प्रथम समयमें ही अनन्तानुबन्धीका सत्त्व हो जावा है पर यहाँ सासादनगुणस्थानसे पूर्व अवस्थाका विचार सम्भव नहीं है, अत सासादनमें अवक्तव्य नहीं होता। इसी कारण सासादनमें भी अनन्तानुबन्धी चतुष्कका एक अल्पतर भग कहा है। अभव्योंके छब्बीस प्रकृतियोंका ही सत्त्व होता है और उनके उन सब प्रकृतियोंकी स्थितियोंमें वृद्धि, ह्रास और अवस्थान सम्भव है, अत उनके छब्बीस प्रकृतियोंके तीन भग कहे।

इस प्रकार समुत्कीर्तनानुगम समाप्त हुआ।

*** स्वामित्व कहते हैं। मिथ्यात्वकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तिका स्वामी कौन है।**

§ १० यह पृच्छासूत्र सुगम है।

*** कोई भी नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव मिथ्यात्वकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिका स्वामी है।**

§ ११ भुजगार और अवस्थितविभक्ति मिथ्यादृष्टि के ही होती है तथा अल्पतरविभक्ति सम्यग्दृष्टि के भी होती है और मिथ्यादृष्टि के भी होती है।

*** मिथ्यात्वका अवक्तव्य भग नहीं है।**

§ १२ क्योंकि मिथ्यात्वसत्कर्मके नि सत्त्वभावको प्राप्त होनेपर पुन उसकी सत्कर्मरूपसे उत्पत्ति नहीं होती है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका बन्ध मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें ही होता है और बन्धके बिना मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति बन नहीं सकती, अत मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति मिथ्यादृष्टिके ही होती है यह मूलमें कहा है। तथा जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अनन्तर उत्तरोत्तर कारणवश उसकी अल्पतर स्थितिका

* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अप्पदरविहत्तिओ को होदि ?

§ १३ सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

* अण्णदरो णेरइयो तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा ।

§ १४ त्ति वत्तव्वं । भुजगारो सम्मादिट्ठीणं चेव । अप्पदरं पुण सम्मादिट्ठिस्स मिच्छादिट्ठिस्स वा ।

* अवट्ठिदविहत्तिओ को होदि ?

§ १५. सुगममेदं ।

* पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तेण से काले सम्मत्तं पडिवण्णो सो अवट्ठिदविहत्तिओ ।

§ १६ तं जहा—सम्मत्तसंतकम्मं पेक्खिदूण समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते गहिदे तग्गहणपढमसमए चेव समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसरूवेण संकंते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदविहत्ती होदि । कुदो ? चरिमसमयमिच्छादिट्ठिस्स सम्मत्तट्ठिदिसंतेण पढमसमयसम्माइट्ठिसम्मत्तट्ठिदिसंतस्स समाणत्तादो ।

क्षय करता है या विशुद्ध परिणामोंके निमित्तसे जिसने मिथ्यात्व की स्थितिका घात किया है उस मिथ्यादृष्टिके और सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्ति होती है। किन्तु मिथ्यात्वकी अवक्तव्यस्थितिविभक्ति नहीं होती, क्योंकि जिसने मिथ्यात्वका क्षय कर दिया है उसके पुनः मिथ्यात्वकी उत्पत्ति नहीं होती।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अल्पतरस्थितिविभक्तिका स्वामी कौन है ?

§ १३ यह पृच्छासूत्र सुगम है।

* कोई नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अल्पतर स्थितिविभक्तिका स्वामी है।

§ १४ ऐसा कहना चाहिए। भुजगार भंग सम्यग्दृष्टियोंके ही होता है। परन्तु अल्पतर भंग सम्यग्दृष्टिके भी होता है और मिथ्यादृष्टिके भी होता है।

* अवस्थित विभक्तिका स्वामी कौन है।

§ १५. यह सूत्र सुगम है।

* पहले उत्पन्न हुई सम्यक्त्व प्रकृतिसे एक समय अधिक स्थितिवाले मिथ्यात्वके साथ विद्यमान कोई एक जीव यदि तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है तो वह अवस्थितविभक्तिका स्वामी है।

§ १६ खुलासा इस प्रकार है—जिस मिथ्यादृष्टि जीवके सत्तामें विद्यमान मिथ्यात्वकी स्थिति सत्तामें विद्यमान सम्यक्त्वकी स्थितिसे एक समय अधिक है वह जीव जब दूसरे समयमें सम्यक्त्वको ग्रहण करता है तब उसके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही मिथ्यात्वकी एक समय अधिक स्थिति सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे संक्रान्त हो जाती है, अतः उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति होती है, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें

चरिमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सम्मत्तणिसेगेहिंतो पढमसमयसम्माइट्ठिस्स सम्मत्तणिसेगा एगणिसेगेणब्भहिया, मिच्छत्तुदयसरूवेण त्थिवुक्कसंकमेण गच्छमाणसम्मत्तणिसेगस्स सम्माइट्ठिपढमसमए गमणाभावादो। तदो णावट्ठिदत्तं जुज्जदि त्ति ? ण एस दोसो, कालं पेक्खिदूण सम्मत्तस्स अवट्ठिदत्तुवलंभादो। तं जहा—मिच्छाइट्ठिचरिमसमए जत्तिया सम्मत्तट्ठिदी तत्तिया चेव सम्माइट्ठिपढमसमए वि, अधो एगसमए गलिदक्खणे चेव मिच्छत्तादो सम्मत्तम्मि उवरि एगसमयवड्ढिदंसणादो। णिसेगेहि अवट्ठिदत्तं जदि इच्छिज्जदि तो वि ण दोसो, कालमस्सिदूण सम्मत्त-मिच्छत्ताणं समाणट्ठिदिसंतकम्मिएण णिसेगे पडुच्च एगणिसेगेणाहियमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण मिच्छादिट्ठिणा सम्मत्ते गहिदे चरिमपढमसमयमिच्छादिट्ठिसम्मादिट्ठीसु णिसेगाणं सरिसत्तुवलंभादो।

§ १७. सम्मामिच्छत्तस्स पुण हेट्ठा उवरिं च एगणिसेगाहियमिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते गहिदे अवट्ठिदत्तं होदि, सम्माइट्ठिपढमसमयम्मि एगे णिसेगे त्थिवुक्कसंकमेण गदे उवरि एगणिसेगस्स वड्ढिदंसणादो। सुत्तकारो पुण पहाणीकयकालो। तं कुदो णव्वदे ? सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तेण सम्मत्ते पडिवण्णे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमक्कमेण अवट्ठिदभावपरूवणादो।

सम्यत्वका जो स्थितिसत्त्व था, सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें प्राप्त हुआ सम्यक्त्वका स्थितिसत्त्व उसके समान है।

शंका—मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें जो सम्यक्त्वके निषेक हैं उनसे सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें प्राप्त हुए सम्यक्त्वके निषेक एक अधिक हो जाते हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके उदयरूपसे स्तिवुक सक्रमणके द्वारा प्राप्त होनेवाला सम्यक्त्वका निषेक सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके उदयरूपसे नहीं प्राप्त होता है। अर्थात् मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका निषेक स्तिवुक सक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वरूप होता रहता है परन्तु सम्यक्त्वके प्राप्त होनेपर वह निषेक मिथ्यात्वरूप नहीं होता और इस प्रकार प्रकृतमें एक निषेककी वृद्धि हो जाती है, अत सम्यक्त्वप्रकृतिका अवस्थितपना नहीं बनता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कालकी अपेक्षा सम्यक्त्वका अवस्थितपना बन जाता है। उसका खुलासा इस प्रकार है - मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जितनी स्थिति थी उतनी ही सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें रही, क्योंकि नीचे एक समयके गलनेके समयमें ही मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें ऊपर एक समयकी वृद्धि देखी जाती है।

अब यदि निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितपना चाहते हो तो भी दोष नहीं है, क्योंकि कालकी अपेक्षा जिसके सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका स्थितिसत्कर्म समान है और निषेकोंकी अपेक्षा जिसके मिथ्यात्वका स्थितिसत्कर्म एक निषेक अधिक है ऐसे किसी एक मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर मिथ्यादृष्टिके अन्तिम और सम्यदृष्टिके प्रथम समयमें दोनोंके निषेकोंकी समानता पाई जाती है।

§ १७ सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा तो जिसके नीचे और ऊपर एक निषेक अधिक हो ऐसे मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर अवस्थितपना प्राप्त होता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें एक निषेकके स्तिवुकसक्रमणके द्वारा चले जानेपर ऊपर एक निषेककी वृद्धि देखी जाती है। किन्तु चूर्णिसूत्रकारने तो कालकी प्रधानतासे कथन किया है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि उन्होंने सम्यक्त्व प्रकृतिसे एक समय अधिक स्थितिवाले मिथ्यात्वके

§ १८ किं च जदि णिसेगेहि चेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदत्तमिच्छिज्जदि तो अंतरकरणं काऊण मिच्छत्तपढमट्ठिदिं गालिय विदियट्ठिदीए पविद्वदंसणतियट्ठिदिसंतकम्मस्स उवसमसम्माइट्ठिस्स वि अवट्ठिदत्तं होदि, तत्थ दंसणमोहणिसेगाणं गलणाभावादो। ण च वक्खाणाइरिएण एत्थ अवट्ठिदभावो परूविदो। तदो जाणिज्जइ जहा वक्खाणाइरियो एत्थुद्देसे पहाणीकयकालो त्ति। जुत्तीए वि एसो चेव अत्थो जुज्जदे, कम्मक्खंधाणं कम्मभावेणावट्ठाणस्स कम्मट्ठिदित्तादो। ण च कम्मक्खंधो ट्ठिदी; पयडि-ट्ठिदि-अणुभागाधारस्स ट्ठिदित्तविरोहादो।

* अवत्तव्वविहत्तिओ अण्णदरो।

§ १९. कुदो? अण्णदरगईए अण्णदरकसाएण अण्णदरतसपाओग्गोगाहणाए अण्णदरलेस्साए णिस्संतीकयसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेण मिच्छादिट्ठिणा पढमसम्मत्ते गहिदे अवत्तव्वभावुवलंभादो।

साथ सम्यक्त्व प्राप्त होनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका क्रमसे अवस्थितपना बना है। इससे मालूम होता है कि चूर्णिसूत्रमें कालकी प्रधानतासे कथन किया है।

§ १८ दूसरे यदि निषेकोंकी अपेक्षा ही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थितपना स्वीकार किया जाय तो अन्तरकरण करके और मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिको गलाकर दूसरी स्थितिमें जिसने दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका स्थितिसत्कर्म प्राप्त कर लिया है ऐसे प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टिके भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थितपना प्राप्त होता है क्योंकि वहाँपर दर्शनमोहनीयके निषेकोंका गलन नहीं होता है। परन्तु यतिवृषभ आचार्यने यहाँपर अवस्थितपनेका कथन नहीं किया है। इससे जाना जाता है कि यतिवृषभ आचार्यने इस प्रदेशमें कालकी प्रधानतासे कथन किया है। युक्तिसे भी यही अर्थ जुड़ता है, क्योंकि कर्मस्कन्धोंका कर्मरूपसे रहना ही कर्मस्थिति कही जाती है। केवल कर्मस्कन्ध स्थितिरूप नहीं हो सकता क्योंकि प्रकृति, स्थिति और अनुभागके आधारको केवल स्थिति माननेमें विरोध आता है।

* अवक्तव्यविभक्तिवाला कोई भी जीव होता है।

§ १९ क्योंकि जिसने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको निःसत्त्व कर दिया है ऐसे किसी एक मिथ्यादृष्टि जीवके अन्यतर गति अन्यतर कषाय, त्रस पर्यायके योग्य अन्यतर अवगाहना और अन्यतर लेश्याके रहते हुए प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्राप्त करने पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवक्तव्य भाव देखा जाता है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका स्वामी चारों गतियोंका सम्यग्दृष्टि जीव हो सकता है, क्योंकि उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिविभक्ति संक्रमणसे ही प्राप्त होती है और इनमें मिथ्यात्वका संक्रमण सम्यग्दृष्टिके ही होता है। तथा चारों गतियोंके मिथ्यादृष्टि जीवके उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है क्योंकि मिथ्यादृष्टिके अधःस्थितिगलना और स्थितिकाण्डकके द्वारा उत्तरोत्तर इनकी स्थितिमें न्यूनता देखी जाती है। किन्तु जिस सम्यग्दृष्टिने इनकी भुजगार या अवस्थित स्थितिविभक्ति नहीं की उस सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें और इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्तावाले अन्य सम्यग्दृष्टियोंके द्वितीयादि समयोंमें इनकी अल्पतर स्थितिविभक्ति बन जाती है तथा जिन मिथ्यादृष्टियोंके सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पहले समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी स्थिति एक समय अधिक है उनके द्वितीय समयमें सम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अव



❀ एवं सेसाणं कम्माणं णेदव्वं ।

§ २०. एदेण सुत्तस्स देसामासियत्तं जइवसहाइरिएण जाणाविदं । तेणेदेण सूचि-दत्थपरूवणट्ठमेत्थुच्चारणाणुगमं कस्सामो ।

२१. सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त बारसक०-णवणोक० भुजगार-अवट्ठिदविहत्ती कस्स होदि ? अण्णदरस्स मिच्छाइट्ठिस्स ।

स्थित स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि ऐसे जीवके यद्यपि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक अध.निषेक स्तिवुकसक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वमें सक्रमित हो जाता है तो भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी स्थिति एक समय अधिक है, अतः सम्यग्दर्शनके ग्रहण करनेके पहले समयमें मिथ्यात्व द्रव्यके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें सक्रमित होनेसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी ऊपर एक समय स्थिति बढ जाती है. अत' जिस समय सम्यग्दर्शन को यह जीव ग्रहण करता है उस समय सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उतनी ही स्थिति प्राप्त होती है जितनी सम्यक्त्व ग्रहण करनेके पूर्व समयमें थी और इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित स्थितिविभक्ति बन जाती है। यहाँ इस विषयमें यह शका उठाई गई है कि इस प्रकार पहले और दूसरे समयमें सम्यक्त्वकी स्थिति समान भले ही प्राप्त हो जाओ पर निषेकोंमें समानता नहीं हो सकती, किन्तु मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वके जितने निषेक थे सम्यक्त्व ग्रहण करनेके समय उनमें एक निषेक बढ जाता है, क्योकि मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वका एक निषेक स्तिवुकसक्रमणके द्वारा मिथ्यात्वमें सक्रमित हो गया और इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही सम्यक्त्वका एक निषेक कम हो गया। पर दूसरे समयमे सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर सम्यक्त्वका अधस्तन निषेक मिथ्यात्वमें नहीं सक्रमित होता किन्तु एक समय स्थिति अधिक मिथ्यात्वके द्रव्यके सम्यक्त्वमें संक्रमित होनेसे सम्यक्त्वका एक निषेक बढ़ जाता है, अत. उक्त प्रकारसे सम्यक्त्वकी अवस्थित विभक्ति नहीं बन सकती। इस शंकाका वीरसेनस्वामीने जो समाधान किया है उसका सार यह है कि इस प्रकार यद्यपि निषेकमें वृद्धि हो जाती है पर स्थितिमें वृद्धि नहीं होती, क्योंकि मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वकी जितनी स्थिति थी सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर उसको उतनी ही स्थिति प्राप्त हो गई, क्योंकि मिथ्यात्वके अन्तिम समयमें इसकी स्थितिमें यद्यपि एक समय कम हो गया तो भी सम्यक्त्वको ग्रहण करने पर ऊपर एक समय स्थिति में वृद्धि भी हो गई, अत स्थिति समान रही आई। और स्थिति कालप्रधान होती है निषेक प्रधान नहीं। हाँ यदि निषेकोंकी अपेक्षा सम्यक्त्वकी स्थितिमें अवस्थितपना लाना हो तो ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवको लो जिसके मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी स्थिति समान हो किन्तु सम्यक्त्वके निषेकसे मिथ्यात्वका एक निषेक अधिक हो। अब यह जीव जब सम्यक्त्वको ग्रहण करता है तो इसके मिथ्यात्व के अंतिम समयमें सम्यक्त्वके जितने निषेक रहते हैं उतने ही सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके पहले समयमें भी देखे जाते हैं अत यहाँ निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थित विभक्तिपना बन जाता है। तथा सम्यग्मिथ्यात्वके निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितविभक्तिपनाका कथन करते समय सम्यग्मिथ्यात्वके निषेकोंसे मिथ्यात्वके दो निषेक अधिक लेने चाहिये। शेष कथन सुगम है।

❀ इसी प्रकार शेष कर्मोंका जानना चाहिए।

§ २० इस कथनसे यतिवृषभआचार्यने सूत्रका देशामर्षकपना जता दिया, इसलिए इसके द्वारा सूचित होनेवाले अर्थका ज्ञान करानेके लिये यहाँ पर उच्चारणा का अनुगम करते हैं—

§ २१ स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकार का है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित विभक्ति

[1]अप्पदरविहत्ती कस्स? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। अणंताणु० चउक्कस्स तिण्णं पदाणमेवं चेव वत्तव्वं। अवत्त० कस्स? अण्ण० पढमसमयमिच्छाइट्ठिस्स सासणसम्माइट्ठिस्स वा। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारविहत्ती कस्स? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते गहिदे तस्स पढमसमयसम्माइट्ठिस्स, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुवरि मिच्छत्तट्ठिदीए तत्थ सव्विस्से उदयावलियबाहिराए संकामिदत्तादो। उवरिमसुण्णम्मि कधं संकमो? ण, तत्थ वि मिच्छत्तसव्वट्ठिदीए विरोहाभावादो। अप्पदर० कस्स? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा। अवट्ठिदं कस्स? अण्णद० जो समउत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ[2] सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स। अवत्तव्वं कस्स? अण्णदरस्स जो असंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज० पंचिं०तिरि०जोणिणि-मणुसतिय-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० पंचमण०-पंचवचि०-कायजोगि० ओरालि०-वेउव्वि०-तिण्णिवेद-चत्तारिक०-असंजद-चक्खु०-अचक्खु०-पंचले०-भवसि०-सण्णि० आहारि त्ति।

किसके होती है? किसी भी मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अल्पतरविभक्ति किसके होती है? किसी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके शेष तीन पदोंका कथन इसी प्रकार करना चाहिये। अवक्तव्यविभक्ति किसके होती है? किसी एक मिथ्यादृष्टि या सासादनसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें होती है।

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारस्थितिविभक्ति किसके होती है? सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाले और मिथ्यात्वके तत्प्रायोग्य उत्कृष्टस्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा सम्यक्त्वके ग्रहण करने पर उसके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगारस्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि वहाँ पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें मिथ्यात्वको उदयावलिसे रहित शेष समस्त स्थितिका संक्रमण देखा जाता है।

शंका—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थिति से ऊपर शून्यमें मिथ्यात्वका संक्रमण कैसे होता है?

समाधान—नहीं क्योंकि वहाँ भी मिथ्यात्वके संक्रमण होनेमें कोई विरोध नहीं है।

अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है? किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अवस्थितस्थितिविभक्ति किसके होती है? जो मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थिति सत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है ऐसे किसी एक जीवके होती है। अवक्तव्यस्थितिविभक्ति किसके होती है? सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूप सत्कर्मसे रहित जो कोई एक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके अवक्तव्यस्थितिविभक्ति होती है। इसी प्रकार सब नारकी सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती सामान्य मनुष्य मनुष्य पर्याप्त मनुष्यिनी सामान्य देव भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रिय पर्याप्त त्रस त्रस पर्याप्त पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी काययोगी औदारिककाययोगी वैक्रियिककाययोगी तीनों वेदवाले क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, चक्षुदर्शनवाले अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि पाँच लेश्यावाले, भव्य, संज्ञी और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

१ ता० प्रतौ अवट्ठिदविहत्ती इति पाठः। २ आ० प्रतौ—संतकम्मेण इति पाठः।

§ २२. पंचिं०तिरि०अपज्ज० छव्वीसं पयडीणं भुज० अप्प० अवट्ठि० सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पदरं० कस्स ? अण्णद० । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय सव्वविग-लिंदिय-पचिं०अपज्ज०-पंचकाय-तसअपज्ज०-मदि०-सुद०-विहंग०-मिच्छादि० असण्णि त्ति।

§ २३. आणददि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पदर० कस्स० ? अण्णद० सम्मादिट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा । अणंताणु०चउक्क० अप्पदर०-अवत्त-व्वाणमोघं । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अप्प०-अवत्तव्वाणमोघं । एदं चिराणुच्चारण-मस्सिदूण भणिदं । एदीए उच्चारणाए पुण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोघमिदि भणिदं । तेण अवट्ठिदेण वि होदव्वं, अण्णहा ओघत्ताणुववत्तीदो । ण च एसो लिहंताणं दोसो; समुक्कि-त्तणाए वि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमोघमिदि परूविदत्तादो । कधमेत्थ पुण अवट्ठिदभावो

विशेषार्थ—यहाँ पर उच्चारणचार्यने अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थितिविभक्ति मिथ्या-दृष्टिके समान सासादनसम्यग्दृष्टि के भी बतलाई है सो इसका कारण यह है कि जिसने अनतानु बन्धीकी विसयोजना की है ऐसा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी सासादन गुणत्थानको प्राप्त होता है यह बात कसायपाहुडकार ओर यतिवृषभ आचार्यको इष्ट है, अत सासादन गुणस्थानमें अनन्तानु-बन्धीका अवक्तव्य पद बन जाता है । बात यह है कि सक्रमित द्रव्यका एक आवलितक अपकर्षण और उदीरणा आदि काम नहीं होते यह एक मत है ओर दूसरा मत यह है कि अनन्तानुबन्धीरूपसे सक्रमित द्रव्यका सासादनमें उसी समय अपकर्षण और उदीरणा सम्भव हैं। गुणधर आचार्य और यतिवृषभ आचार्य इसी दूसरे मतको मानते हैं। तदनुसार जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसा कोई उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादनमें आता है तो उसके उसी समय प्रत्याख्यानावरण आदि द्रव्यका अनन्तानुबन्धीरूपसे सक्रमित हो जाता है । ओर सक्रमित द्रव्यकी उदीरणा भी हो जाती है, अत सासादन गुणस्थानमे अनन्तानुबन्धीका अवक्तव्य पद बन जाता है। यह कथन नैगम नयकी मुख्यतासे है। शेष कथन सुगम है।

§ २२ पचेंद्रिय तिर्यँच अपर्याप्तकोंमें छव्वीस प्रकृतियोकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विभक्तियाँ होती हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरविभक्ति किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेंद्रिय अपर्याप्त पाँचों स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

§ २३ आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवके होती है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर और अवक्तव्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार,अल्पतर और अवक्तव्य विभक्ति ओघके समान है। यह कथन पुरानी उच्चारणाका आश्रय लेकर किया है। प्रकृति उच्चारणामें तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कथन ओघके समान है ऐसा कहा है, इसलिए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति भी होनी चाहिये, अन्यथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके ओघपना नहीं बन सकता है। यदि कहा जाय कि यह लिखनेवालोंका दोष है सो भी बात नहीं है, क्योंकि समुत्कीर्तनामें भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कथन ओघके समान है ऐसा कहा है।

शंका—तो फिर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें अवस्थितिविभक्तिपना कैसे प्राप्त होता है

कुदो ? मिच्छाइट्ठिणा सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लंतेण मिच्छत्तट्ठिदिसंतादो हेट्ठा कदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण सम्मत्ताहिमुहेण मिच्छाइट्ठिचरिमट्ठिदिखंडय फालिदूण सम्मत्तट्ठिदिसंतादो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण वेदगसम्मत्ते गहिदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदविहत्ती होदि पहाणीकयकालत्तादो। णिसेगाणं पहाणत्ते संते वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणेसु समट्ठिदिसंतकम्मिएसु सव्वेसु अवट्ठिदविहत्ती होदि सम्मत्तस्स। सम्मामिच्छत्तस्स पुण ण होदि। तेण दोण्हं पि पुव्वुत्तुद्देसे चेव अवट्ठिदभावो वत्तव्वो। ण च वेदगसम्मत्ताहिमुहमिच्छाइट्ठिम्मि ट्ठिदिखंडयघादो णत्थि त्ति पच्चवट्ठाणं जुत्तं, वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणम्मि वि कहिं पि विसोहिवसेण अणियमेण ट्ठिदिखंडयणिवादेण बाहाणुवलंभादो। कुदो एदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव उच्चारणादो। दोण्हमुच्चारणाणं कथं ण विरोहो ? ण, विरोहो णाम एगणयविसओ। दो वि उच्चारणाओ पुण भिण्णणयणिबंधणाओ, तम्हा ण विरोहो त्ति। एवं सुक्कलेस्साए वत्तव्वं।

समाधान—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले जिसने मिथ्यात्वके स्थितिसत्त्वसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्त्वको कम कर दिया है, जो सम्यग्दर्शनके सन्मुख है और जिसने मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिकाण्डकका घात करके मिथ्यात्वके स्थितिसत्त्वको सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वसे एक समय अधिक किया है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेपर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थित स्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि यहाँपर कालकी प्रधानता है। निषेकोंकी प्रधानता होनेपर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले समान स्थितिसत्कर्मवाले सभी जीवोंमें सम्यक्त्वकी अवस्थित स्थितिविभक्ति होती है। परन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकी नहीं होती अतः इन दोनोंकी अवस्थितविभक्तिका कथन पूर्वोक्त स्थानमें ही करना चाहिये। यदि कहा जाय कि वेदकसम्यक्त्वके अभिमुख हुए मिथ्यादृष्टि जीवमें स्थितिकाण्डकघात होता ही नहीं सो ऐसा निश्चय करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले किसी भी जीवमें विशुद्धिके अनुसार अनियमसे स्थितिकाण्डकघातकी सिद्धि होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती है।

शंका—यह बात किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान—इसी उच्चारणासे जानी जाती है।

शंका—दोनों उच्चारणाओंमें परस्पर विरोध कैसे नहीं माना जाय ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विरोध एक नयको विषय करता है। परन्तु दोनों उच्चारणाएँ भिन्न भिन्न नयके निमित्तसे प्रवृत्त हैं, अतः कोई विरोध नहीं है। तात्पर्य यह है कि जब एक ही दृष्टिसे विरुद्ध दो बातें कही जाती हैं तब विरोध आता है। किन्तु इन दोनों उच्चारणाओंका कथन भिन्न-भिन्न दृष्टिसे किया गया है अतः कोई विरोध नहीं आता।

इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें कहना चाहिये।

विशेषार्थ—आनतादिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितके बिना तीन पद होते हैं और अवस्थित सहित चार पद होते हैं। इस प्रकार यहाँ वीरसेन स्वामीने दो मतोंका उल्लेख किया है। पहला मत प्राचीन उच्चारणाका है और दूसरा मत इस उच्चारणाका है जिसका वीरसेन स्वामीने सर्वत्र उपयोग किया है। यहाँपर वीरसेन स्वामीने पहले मतके समर्थन या निषेधमें तो कुछ भी नहीं किया है। हाँ दूसरे मतका उन्होंने अवश्य समर्थन किया है। पहले तो उन्होंने यह बतलाया है कि यह लेखकोंकी भूल नहीं है। यदि लेखकोंकी भूल होती तो एक जगह

§ २४ अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वपयडीणमप्पदरं कस्स ? अणद० । एवमाहार०-आहारमिस्स० अवगद०-अकसा० आभिणि० सुद०- ओहि०-मणपज्ज० संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । ओरालियमिस्स० छव्वीस-पयडि०तिण्हं पदाणमोघं । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद० ओघं । एवं वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारए त्ति अभव० छव्वीसपयडीणं तिण्हं पदाणमेइंदियभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

* एत्तो एगजीवेण कालो ।

§ २५. सुगममेदं सुत्तं ।

* मिच्छत्तस्स भुजगारकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २६. एवं पि सुगमं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

होती किन्तु जब समुत्कीर्तनामें भी आनतादिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पद ओघके समान बतलाये हैं तब इसे लेखकोंकी भूल नहीं कह सकते । तब प्रश्न हुआ कि तो यहाँ अवस्थित पद कैसे बनता है ? इसपर वीरसेनस्वामीने यह समाधान किया है कि जिसने आनतादिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाद्वारा मिथ्यात्वसे कम स्थिति कर ली है वह जब सम्यक्त्वके सम्मुख होता है तब मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिखण्डके पतन द्वारा यदि सम्यक्त्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी स्थिति एक समय अधिक करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति बन जाती है । यह कालकी प्रधानतासे कथन किया है । पर जब निषेकोंकी प्रधानतासे विचार करते हैं तब समान स्थितिवालोंके सम्यक्त्वकी अवस्थितविभक्ति प्रात होती है । किन्तु इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति नहीं बनती ।

§ २४ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमे सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, अभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भंग ओघके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्ति ओघके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भंग एकेन्द्रियोंके समान है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

* आगे एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमका अधिकार है ।

§ २५. यह सूत्र सुगम है ।

* मिथ्यात्वके भुजगारस्थितिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ २६ यह सूत्र भी सुगम है ।

* जघन्य काल एक समय है ।

§ २७ कुदो? मिच्छत्तट्ठिदीए उवरि एगसमयं वड्ढिदूण बंधे मिच्छत्तट्ठिदिभुजगारस्स एगसमयकालुवलंभादो।

* उक्कस्सेण चत्तारि समया ४।

§ २८ तं जहा—अद्धाक्खएण ट्ठिदिबंधे वड्ढिदे भुजगारस्स एगो समओ। संकिलेसक्खएण वड्ढिदूण बद्धे बिदियो समओ। एइंदियस्स विग्गहं कादूण पंचिंदिएसुप्पण्ण-पढमसमए असण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स तदिओ समओ। सरीरं घेत्तूण चउत्थसमए सण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स चउत्थो भुजगारसमओ।

§ २९. का अद्धा णाम? ट्ठिदिबंधकालो। किं तस्स पमाणं? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। एदिस्से अद्धाए खओ विणासो अद्धाक्खओ णाम। एगट्ठिदिबंधकालो सव्वेसिं जीवाणं समाणपरिणामो किण्ण होदि? ण, अंतरंगकारणभेदेण सरिसत्ताणुववत्तीदो। एगजीवस्स सव्वकालमेगपमाणट्ठिदिबंधो किण्ण होदि? ण, अंतरंगकारणेसु दव्वादिसंबंधेण परियत्तमाणस्स एगम्मि चेव अंतरंगकारणे सव्वकालमवट्ठाणाभावादो।

§ ३०. को संकिलेसो णाम? कोह-माण-माया-लोहपरिणामविसेसो। ते किं सव्वासिं

---

§ २७ क्योंकि मिथ्यात्वकी स्थितिके ऊपर एक समय बढ़ाकर बन्ध करनेपर मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका एक समय काल पाया जाता है।

* उत्कृष्ट काल चार समय है ४।

§ २८ इसका खुलासा इस प्रकार है—अद्धाक्षयसे स्थितिबन्धके बढ़ानेपर भुजगारका पहला समय होता है। संक्लेशक्षयसे स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करने पर दूसरा भुजगार समय होता है। एकेन्द्रिय पर्यायसे विग्रह करके पंचेन्द्रियमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञीकी स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके तीसरा भुजगारसमय होता है। शरीर ग्रहण करके चौथे समयमें संज्ञीकी स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके चौथा भुजगार समय होता है।

§ २९ शंका—अद्धा किसे कहते हैं?

समाधान—स्थितिबन्धके कालको अद्धा कहते हैं।

शंका—उसका प्रमाण क्या है?

समाधान—जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

इस अद्धाके क्षय अर्थात् विनाशका नाम अद्धाक्षय है।

शंका—सब जीवोंके एक स्थितिबन्धका काल समान परिणामवाला क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तरंग कारणमें भेद होनेसे उसमें समानता नहीं बन सकती है।

शंका—एक जीव के सर्वदा स्थितिबन्ध एक समान कालवाला क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं क्योंकि यह जीव अन्तरंग कारणोंमें द्रव्यादिकके सम्बन्धसे परिवर्तन करता रहता है, अतः उसका एक ही अन्तरंग कारणमें सर्वदा अवस्थान नहीं पाया जाता है।

§ ३० शंका—संक्लेश किसे कहते हैं?

समाधान—क्रोध, मान, माया और लोभरूप परिणामविशेषको संक्लेश कहते हैं।

§ २४. अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वपयडीणमप्पदरं कस्स ? अणद० । एवमाहार०-आहारमिस्स० अवगद०-अकसा० आभिणि० सुद०- ओहि०-मणपज्ज० संजद०-समाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति । ओरालियमिस्स० छब्बीस-पयडि०तिण्हं पदाणमोघं । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद० ओघं । एवं वेउव्वियमिस्स०-कम्मइय०-अणाहारए त्ति अभव० छब्बीसपयडीणं तिण्हं पदाणमेइंदियभंगो ।

एवं सामित्ताणुगमो समत्तो ।

* एत्तो एगजीवेण कालो ।

§ २५. सुगममेदं सुत्तं ।

* मिच्छत्तस्स भुजगारकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ २६. एवं पि सुगम ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

होती किन्तु जब समुत्कीर्तनामें भी आनतादिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके पद ओघके समान बतलाये हैं तब इसे लेखकोंकी भूल नहीं कह सकते । तव प्रश्न हुआ कि तो यहाँ अवस्थित पद कैसे बनता है ? इसपर वीरसेनस्वामीने यह समाधान किया है कि जिसने आनतादिकमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनाद्वारा मिथ्यात्वसे कम स्थिति कर ली है वह जब सम्यक्त्वके सम्मुख होता है तब मिथ्यात्वके अन्तिम स्थितिखण्डके पतन द्वारा यदि सम्यक्त्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी स्थिति एक समय अधिक करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करता है तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति बन जाती है। यह कालकी प्रधानतासे कथन किया है। पर जब निषेकोंकी प्रधानतासे विचार करते हैं तब समान स्थितिवालोंके सम्यक्त्वकी अवस्थितविभक्ति प्रात होती है । किन्तु इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वकी अवस्थितविभक्ति नहीं बनती ।

§ २४ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिविभक्ति किसके होती है ? किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार आहारककाययोगी आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायी, अभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन:पर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसयत सूक्ष्मसापरायिकसंयत, यथाख्यात-सयत, सयतासयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशम-सम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भग ओघके समान है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्ति ओघके समान है । इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये । अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा तीन पदोंका भग एकेन्द्रियोंके समान है ।

इस प्रकार स्वामित्वानुगम समाप्त हुआ ।

* आगे एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमका अधिकार है ।

§ २५ यह सूत्र सुगम है ।

* मिथ्यात्वके भुजगारस्थितिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ २६ यह सूत्र भी सुगम है ।

* जघन्य काल एक समय है ।

§ २७ कुदो ? मिच्छत्तट्ठिदीए उवरि एगसमयं वड्ढिदूण बंधे मिच्छत्तट्ठिदिभुजगारस्स एगसमयकालुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण चत्तारि समया ४ ।

§ २८ तं जहा—अद्धाक्खएण द्विदिबंधे वड्ढिदे भुजगारस्स पढमो समओ । संकिलेसक्खएण वड्ढिदूण बद्धे विदियो समयो । एइंदियस्स विग्गहं काढूण पंचिंदिएसुप्पण्णपढमसमए असण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स तदियो समओ । सरीरं घेत्तूण चउत्थसमए सण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स चउत्थो भुजगारसमओ ।

§ २९ का अद्धा णाम ? द्विदिबंधकालो । किं तस्स पमाणं ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । एदिस्से अद्धाए खओ विणासो अद्धाक्खओ णाम । एगट्ठिदिबंधकालो सव्वेसिं जीवाणं समाणपरिणामो किण्ण होदि ? ण, अंतरंगकारणभेदेण सरिसत्ताणुववत्तीदो । एगजीवस्स सव्वकालमेगपमाणद्धाए द्विदिबंधो किण्ण होदि ? ण, अंतरंगकारणेसु दव्वादिसंबंधेण परियत्तमाणस्स एगम्मि चेव अंतरंगकारणे सव्वकालमवट्ठाणाभावादो ।

§ ३० को संकिलेसो णाम ? कोह-माण-माया-लोहपरिणामविसेसो । से किं सव्वासिं

---

§ २७ क्योंकि मिथ्यात्वकी स्थितिके ऊपर एक समय बढ़ाकर बन्ध करनेपर मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका एक समय काल पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट काल चार समय है ४ ।

§ २८ उसका खुलासा इस प्रकार है—अद्धाक्षयसे स्थितिबन्धके बढ़ानेपर भुजगारका पहला समय होता है । संक्लेशक्षयसे स्थितिको बढ़ाकर बन्ध करने पर दूसरा भुजगार समय होता है । एकेन्द्रिय पर्यायसे विग्रह करके पंचेन्द्रियमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञीकी स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके तीसरा भुजगारसमय होता है । शरीर ग्रहण करके चौथे समयमें संज्ञीकी स्थितिका बन्ध करनेवाले जीवके चौथा भुजगार समय होता है ।

§ २९ शंका—अद्धा किसे कहते हैं ?

समाधान—स्थितिबन्धके कालको अद्धा कहते हैं ।

शंका—उसका प्रमाण क्या है ?

समाधान—जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

इस अद्धाके क्षय अर्थात् विनाशका नाम अद्धाक्षय है ।

शंका—सब जीवोंके एक स्थितिबन्धका काल समान परिमाणवाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि अन्तरंग कारणमें भेद होनेसे उसमें समानता नहीं बन सकती है ।

शंका—एक जीव के सर्वदा स्थितिबन्ध एक समान कालवाला क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि यह जीव अन्तरंग कारणोंमें द्रव्यादिकके सम्बन्धसे परिवर्तन करता रहता है अतः उसका एक ही अन्तरंग कारणमें सर्वदा अवस्थान नहीं पाया जाता है ।

§ ३० शंका—संक्लेश किसे कहते हैं ?

समाधान—क्रोध, मान, माया और लोभरूप परिणामविशेषको संक्लेश कहते हैं ।

ट्ठिदीणं बंधस्स सव्वे वि पाओग्गा ? ण, परिमिदाणं ट्ठिदीणं बंधस्स परिमिदसंकिलेसाणं चेव कारणत्तादो। तं जहा—सव्वजहण्णबंधो धुवट्ठिदी णाम। तिस्से ट्ठिदीए बंधपाओग्गाणि असंखेज्जलोगमेत्तट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि छवड्ढीए असंखे०लोगमेत्तछट्ठाणेहि सह अवट्ठिदाणि। समयुत्तरधुवट्ठिदीए वि एत्तियाणि चेव। णवरि धुवट्ठिदिपरिणामेहिंतो पलिदो० असंखे०भागपडिभागेण विसेसाहियाणि। एवं विसेसाहियकमेण ट्ठिदाणि जाव सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीए चरिमसमओ त्ति। पुणो धुवट्ठिदीए असंखेज्जलोगज्झवसाणाणि पलिदो० असंखे०भागमेत्तखंडाणि कायव्वाणि। ताणि च अण्णोण्णं विसेसाहियाणि। एवं सव्वट्ठिदिअज्झवसाणाणि खंडेदव्वाणि। संपहि धुवट्ठिदीए पढमखंडट्ठिदअसंखे०लोगट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेहि धुवट्ठिदी चेव बज्झदि ण उवरिमट्ठिदीओ। कुदो ? तब्बंधसत्तीए तेसिमभावादो। णिरुद्धट्ठिदीए पुण हेट्ठिमट्ठिदीओ ण बज्झंति; सव्वजहण्णट्ठिदिबंधादो हेट्ठा बंधट्ठिदीणमभावादो। पुणो तत्थतणविदियखंडपरिणामेहि धुवट्ठिदिं समउत्तरधुवट्ठिदिं च बंधदि ण उवरिमट्ठिदीओ। पुणो तदियखंडपरिणामेहि धुवट्ठिदिं समउत्तरधुवट्ठिदिं दुसमउत्तरधुवट्ठिदिं च बंधदि। एवं तिसमय-चदुसमय-पंचसमयुत्तरादिकमेण धुवट्ठिदिं बंधाविय णेदव्वं जाव चरिमपरिणामखंडं ति। पुणो चरिमखंडपरिणामेहि धुवट्ठिदिप्पहुडि समयुत्तरादिकमेण परिणामखंडमेत्तट्ठिदीओ बज्झंति, ण

शंका—वे सब सक्लेश परिणाम क्या सब स्थितियोंके बन्धके योग्य होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि परिमित स्थितियोंके बन्धके परिमित सक्लेश परिणाम ही कारण होते हैं। उसका खुलासा इस प्रकार है—सबसे जघन्य बन्धका नाम ध्रुवस्थिति है। उस स्थितिके बन्धके योग्य असख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। जो षट्स्थानपतित वृद्धिकी अपेक्षा असख्यात लोकप्रमाण छह्स्थानोंके साथ अवस्थित हैं। एक समय अधिक ध्रुवस्थिति-बन्धके योग्य भी इतने ही स्थितिबन्धाध्यवसानस्थान होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि वे परिणाम ध्रुवस्थितिके परिणामोंमें पल्योपमके असख्यातवें भागका भाग देने पर जितना लब्ध आवे उतने ध्रुवस्थितिके परिणामोंसे अधिक होते हैं। इस प्रकार सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण स्थितिके अन्तिम समय तक वे परिणाम उत्तरोत्तर विशेषाधिक क्रमसे स्थित हैं। पुन ध्रुवस्थितिके असख्यात लोकप्रमाण परिणामोंके पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण खण्ड करने चाहिये। जो परस्पर विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार सब स्थितियोंके परिणामस्थानोंके खण्ड करने चाहिये। इनमें ध्रुवस्थितिके पहले खण्डमें स्थित असख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंसे ध्रुवस्थितिका ही बन्ध होता है अगली स्थितियोका नहीं, क्योंकि उन परिमाणोंमें आगेकी स्थितियोंके बन्धकी शक्ति नहीं पाई जाती है तथा उन परिणामोंके द्वारा ध्रुवस्थितिसे नीचेकी स्थितियोंका बन्ध नहीं होता है, क्योंकि सबसे जघन्य स्थितिबन्धके नीचे बन्धस्थितियाँ नहीं पाई जाती हैं। पुन ध्रुवस्थितिसम्बन्धी दूसरे खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थिति और एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका बन्ध होता है, किन्तु इससे आगेकी स्थितियोंका बन्ध नहीं होता। पुन तीसरे खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थिति, एक समय अधिक ध्रुवस्थिति और दो समय अधिक ध्रुवस्थितिका बन्ध होता है। इस प्रकार तीन समय, चार समय और पाँच समय आदि अधिकके क्रमसे ध्रुवस्थितिका बन्ध कराते हुए अन्तिम परिणामखड तक ले जाना चाहिये। पुन अन्तिम खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थितिसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे परिणामोंके जितने खड हों उतनी स्थितियोंका बन्ध होता

उवरिमाओ। समयुत्तरधुवट्ठिदीए पढमखंडपरिणामेहि संखाए धुवट्ठिदिबिदियखंडसमाणेहि धुवट्ठिदी समयुत्तरधुवट्ठिदी वा बज्झइ, ण उवरिमाओ। बिदियखंडपरिणामेहि धुवट्ठिदितदियखंडसमाणेहि धुवट्ठिदी समयुत्तरधुवट्ठिदी दुसमयुत्तरधुवट्ठिदी च बज्झइ, ण उवरिमाओ। एवं णेदव्वं जाव दुचरिमखंडो त्ति। पुणो चरिमखंडअज्झवसाणट्ठाणेहि समयाहियधुवट्ठिदिप्पहुडि परिणामखंडभागहारमेत्तट्ठिदीओ उवरिमाओ बधंति ण धुवट्ठिदी, धुवट्ठिदिपरिणामेहि चरिमखंडपरिणामाणं सरिसत्ताभावादो। एवं जाणिदूण णेदव्वं जाव अणुक्कस्सुक्कस्सट्ठिदि त्ति।

§ २१ उक्कस्सट्ठिदीए पढमखंडपरिणामेहि उक्कस्सट्ठिदिप्पहुडि हेट्ठा परिणामखंडभागहारमेत्तट्ठिदीओ बज्झंति। बिदियखंडपरिणामेहि रूवूणपरिणामखंडसलागमेत्तट्ठिदीओ हेट्ठिमाओ बज्झंति। तदियखंडपरिणामेहि दुरूवूणपरिणामखंडसलागमेत्तट्ठिदीओ हेट्ठिमाओ बज्झंति। एवं गंतूण उक्कस्सट्ठिदीए चरिमखंडपरिणामेहि उक्कस्सट्ठिदी एक्का चेव बज्झइ। कुदो, तक्खंडपरिणामाणं हेट्ठिमखंडेहि अणुकट्ठीए अभावादो। जेणेगट्ठिदिपरिणामा उवरि पलिदोवमस्स असंखे०भागमेत्ताणं चेव ट्ठिदीणं बंधकारणं होंति, तेण अद्धाक्खएण बहुमहंतो वि ट्ठिदिभुजगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो चेव त्ति घेत्तव्वो।

§ २२ संपहि एदेसिं ट्ठिदिबंधज्झवसाण[1]ट्ठाणाणं परिणामकालो जहण्णेण एगसमय

है, इससे और ऊपरकी स्थितियोंका नहीं। एक समय अधिक ध्रुवस्थितिके पहले खंडके परिणामोंसे, जो कि संख्यामें ध्रुवस्थितिके दूसरे खंडके समान हैं, ध्रुवस्थितिका या एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका बन्ध होता है ऊपरकी स्थितियोंका नहीं। ध्रुवस्थितिके तीसरे खण्डके समान दूसरे खण्डके परिणामोंसे ध्रुवस्थितिका, एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका और दो समय अधिक ध्रुवस्थितिका बन्ध होता है, ऊपरकी स्थितियोंका नहीं। इसी प्रकार द्विचरमखण्डतक ले जाना चाहिये। पुनः अन्तिम खण्डके अध्यवसानस्थानोंसे एक समय अधिक ध्रुवस्थितिसे लेकर परिणामोंके खण्ड करनेके लिये जो भागहार कहा है तत्प्रमाण ऊपरकी स्थितियोंका बन्ध होता है ध्रुवस्थितिका नहीं क्योंकि ध्रुवस्थितिके परिणामोंके साथ अन्तिम खण्डके परिणामोंकी समानता नहीं है। इसी प्रकार जानकर अनुत्कृष्ट उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक ले जाना चाहिये। अर्थात् जिन परिणामोंसे जिन स्थितियोंका बन्ध हो उसका विचार कर कथन करना चाहिए।

§ २१ उत्कृष्ट स्थितिके प्रथम खण्डके परिणामोंसे उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर परिणामखण्डोंके भागहार प्रमाण नीचेकी स्थितियाँ बंधती हैं। दूसरे खण्डके परिणामोंसे एक कम परिणामखण्डोंकी शलाकाप्रमाण नीचेकी स्थितियाँ बंधती हैं। तीसरे खण्डके परिणामोंसे दो कम परिणामखण्डोंकी शलाकाप्रमाण नीचेकी स्थितियाँ बंधती हैं इस प्रकार जाकर उत्कृष्ट स्थितिके अन्तिम खण्डके परिणामोंसे एक उत्कृष्ट स्थिति ही बंधती है क्योंकि अन्तिम खण्डके परिणामोंकी नीचेके खण्डोंके साथ अनुकृष्टि नहीं पाई जाती है। चूंकि एक स्थितिके परिणाम ऊपर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिके ही बन्धके कारण होते हैं, अतः अद्धाक्षयके द्वारा खूब बढ़ाकर भी यदि भुजगार स्थितिबन्ध हो तो वह पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण ही बड़ा होगा ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

§ २२. इन स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंका जघन्य परिणामकाल एक समय और उत्कृष्ट

१ आ० प्रतौ –पाणाणं हाणाणं इति पाठः।

मेत्तो, उक्कस्सेण अट्ठसमयमेत्तो। कुदो ? एगपरिणामप्पणादो। एगट्ठिदीए सव्वट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेसु अवट्ठाणकालो पुण जहण्णेण एगसमयमेत्तो, उक्क० अंतोमुहुत्तं। पुणो विसमय-तिसमयादिपाओग्गेहि ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेहि णिरुद्धेगट्ठिदिं बंधमाणेण तट्ठिदिबंधकाले समत्ते संकिलेसक्खयाभावादो तिस्से ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेहि समयुत्तरादिकमेण पलिदो० असंखे०भागमेत्तट्ठिदिवियप्पेसु उवरि चडिदूण बद्धेसु अद्धाक्खएण एगो भुजगारसमओ लद्धो होदि। पुणो चरिमसमए एगट्ठिदिबंधपाओग्गट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणेसु अवट्ठाणकालो समत्तो। तस्स समत्तीए संकिलेसक्खओ णाम।

§ ३३. एवंविहेण संकिलेसक्खएण उवरि समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिकमेण जाव संखेज्जसागरोवममेत्तट्ठिदीणं ट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि समयाविरोहेण परिणामिय[1] बंधमाणस्स संकिलेसक्खएण भुजगारस्स विदियो समयो। तदिए समए कालं कादूण विग्गहगदीए पंचिंदिएसुप्पण्णपढमसमए असण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स एइंदियस्स तदियो भुजगारसमयो। चउत्थसमए सरीरं घेत्तूण अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं बंधमाणस्स चउत्थो भुजगारसमओ। एवं मिच्छत्तभुजगारस्स चत्तारि चेव समया। जत्थ जत्थ भुजगारो वुच्चदि तत्थ तत्थ एत्थ परूविदअत्थो परूवेयव्वो।

* अप्पदरकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ३४. सुगममेदं।

आठ समय प्रमाण है, क्योंकि यहाँ एक परिणामकी मुख्यता है। परन्तु सब स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंमें एक स्थितिका अवस्थानकाल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टरूपसे अन्तर्मुहूर्त होता है। पुन दो समय और तीन समय आदिके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंके द्वारा विवक्षित एक स्थितिको बाधनेवाले जीवके यद्यपि उस स्थितिबन्धका काल समाप्त हो जाता है तो भी सक्लेशका क्षय न होनेसे उस स्थितिके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंके द्वारा एक समय अधिक आदिके क्रमसे पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण स्थितिविकल्पोंके ऊपर जाकर बन्ध होनेपर अद्धाक्षयसे एक भुजगारसमय प्राप्त होता है। पुन अन्तिम समयमें एक स्थितिबन्धके योग्य स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंमें रहनेका काल समाप्त होता है। उसकी समाप्तिको सक्लेशक्षय कहते हैं।

§ ३३ इस प्रकारके सक्लेशक्षयके द्वारा ऊपर एक समय अधिक और दो समय अधिक आदिके क्रमसे सख्यात हजार सागरप्रमाण स्थितियोंके स्थितिबन्धाध्यवसानस्थानोंको यथाविधि परणमाकर बन्ध करनेवाले जीवके सक्लेशक्षयसे भुजगारका दूसरा समय होता है। तीसरे समयमें जो एकेन्द्रिय मरकर विग्रहगतिसे पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ है वह वहाँ उत्पन्न होनेके पहले समयमें असज्ञीकी स्थितिका बन्ध करता है तब इसके तीसरा भुजगार समय होता है। तथा चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके अन्त:कोड़ाकोडीप्रमाण स्थितिका बन्ध करनेवाले उस जीवके चौथा भुजगार समय होता है इस प्रकार मिथ्यात्वसम्बन्धी भुजगारके चार ही समय होते हैं। आगे जहाँ जहाँ भुजगारका कथन किया जाय वहाँ वहाँ यहाँ पर कहे गये अर्थकी प्ररूपणा करनी चाहिये।

* मिथ्यात्वके अल्पतरस्थितिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है ?

§ ३४ यह सूत्र सुगम है।

---

१ आ० प्रतौ परिणमिय इति पाठ ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

§ ३५ कुदो ? भुजगारमवट्ठिदं वा करेमाणेण एगसमयं संतस्स हेट्ठा ओदरिदूण बंधिय बिदियसमए भुजगारे अवट्ठाणे वा कदे अप्पदरस्स एगसमयउवलंभादो ।

* उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं ।

§ ३६ तं जहा— एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छाइट्ठी एगं ट्ठिदिं बंधमाणो अच्छिदो, तिस्से ट्ठिदीए हेट्ठा बंधमाणेण सव्वुक्कस्सो तप्पाओग्गो अंतोमुहुत्तमेत्तो अप्पदरकालो गमिदो । पुणो से काले ट्ठिदिसंतकम्मं बोलेदूण बंधिहिदि त्ति कालं कादूण तिपलिदोवमिएसु उववण्णो । पुणो तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति सम्मत्तं घेत्तूण पढमछावट्ठिं भमिय सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय पुणो वि सम्मत्तं घेत्तूण बिदियछावट्ठिं भमिय अवसाणे तप्पाओग्गपरिणामेण मिच्छत्तं गंतूण एक्कत्तीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । पुणो कालं कादूण मणुस्सेसुववज्जिय जाव सक्को ताव अंतोमुहुत्तकालं संतकम्मस्स हेट्ठा बंधिय पुणो संकिलेसं पूरेदूण भुजगारविहत्तिओ जादो । एवं बेअंतोमुहुत्तेहि तिहि पलिदोवमेहि य सादिरेयतेवट्ठिसागरोवमसदमप्पदरस्स उक्कस्सकालो होदि ।

* अवट्ठिदकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ३७ सुगममेदं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

---

* जघन्य काल एक समय है ।

§ ३५. क्योंकि भुजगार या अवस्थितको करनेवाला कोई एक जीव एक समयके लिये सत्कर्मसे नीचे उतरकर स्थितिका बन्ध करके पुनः दूसरे समयमें यदि भुजगार या अवस्थित विकल्पको करता है तो उसके अल्पतरका एक समय काल प्राप्त होता है ।

* उत्कृष्ट काल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है ।

§ ३६ उसका खुलासा इस प्रकार है—कोई एक तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव एक स्थितिका बन्ध करता हुआ विद्यमान है । पुनः उस स्थितिके नीचे बन्ध करते हुए उसने उसके योग्य सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अल्पतरका काल बिताया । पुनः तदनन्तर कालमें स्थितिसत्कर्मको व्यतीत करके बन्ध करेगा इसलिये मरकर वह तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः वहाँ पर जीवनमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्वको ग्रहण करके और पहले छयासठ सागर काल तक भ्रमण करके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त किया । तथा फिर भी सम्यक्त्वको ग्रहण करके दूसरी बार छयासठ सागर काल तक भ्रमण करके अन्तमें मिथ्यात्वके योग्य परिणामोंसे मिथ्यात्वमें आकर इकतीस सागरप्रमाण स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । पुनः मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ यथासंभव अन्तर्मुहूर्त कालतक सत्कर्मके नीचे बन्ध करके पुनः संक्लेशको प्राप्त होकर वह भुजगारस्थितिविभक्तिवाला हो गया । इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्यसे अधिक एक सौ त्रेसठ सागर अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है ।

* मिथ्यात्वकी अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीवका कितना काल है ?

§ ३७ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य काल एक समय है ।

§ ३८. कुदो? भुजगारमप्पदरं वा कुणमाणेण एगसमयसंतसमाणट्ठिदीए पबद्धाए अवट्ठिदस्स एगसमयुवलंभादो

* उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३९. कुदो? भुजगारमप्पदरं वा कादूण संतसमाणट्ठिदिबंधस्स उक्कस्सेण अंतोमुहुत्त-मेत्तकालुवलंभादो

* एवं सोलसकसाय-णवणोकसायाणं ।

§ ४०. जहा मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदाणं परूवणा कदा तहा सोलक०-णवणोकसायाणं भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदाणं वि परूवणा कायव्वा । एत्थतण-विसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि ।

* णवरि भुजगारकम्मंसिओ उक्कस्सेण एगूणवीससमया ।

§ ४१. तं जहा—सत्तारससमयाहियएगावलियसेसाउएण एइंदिएण अणंताणुबंधि-कोधं मोत्तूण सेसमाणादिपण्णारसपयडीसु परिवाडीए पण्णारससमयेहि अद्धाक्खएण अण्णोण्णं पेक्खिय वड्ढिय बद्धासु पण्णारस वि पयडीओ भुजगारसंकमपाओग्गाओ जादाओ । पुणो बंधावलियमेत्तकाले अदिक्कंते सत्तरससमयमेत्ताउअसेसे पुव्वुत्तावलिय-कालम्मि पढमसमयप्पहुडि पण्णारससमएसु वड्ढिदूण बद्धपण्णारसपयडिट्ठिदि बंधपरि-वाडीए अणंताणुबंधिकोधे संकममाणस्स पण्णारस भुजगारसमया अणंताणुबंधिकोधस्स

§ ३८ क्योंकि भुजगार या अल्पतरको करनेवाले किसी जीवके द्वारा एक समय तक सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिका बन्ध करने पर अवस्थितका एक समय काल पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३९ क्योंकि भुजगार या अल्पतर करके सत्तामें स्थित स्थितिके समान स्थितिके निरन्तर बँधनेका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है ।

* इसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका काल जानना चाहिये ।

§ ४० जिस प्रकार मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित भगोंका कथन किया है उसी प्रकार सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित विकल्पोंका कथन करना चाहिये । अब यहाँ पर विशेष कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* इतनी विशेषता है कि भुजगारस्थितिविभक्तिवालेका उत्कृष्ट काल उन्नीस समय है ।

§ ४१ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिसके सत्रह समय अधिक एक आवलिप्रमाण आयु शेष है ऐसे एकेन्द्रियके द्वारा अनन्तानुबन्धी क्रोधको छोड़कर शेष मान आदि पन्द्रह प्रकृतियोंके क्रमसे पन्द्रह समयोंमें अद्धाक्षयसे एक दूसरेको देखते हुए उत्तरोत्तर स्थितिको बढाकर बाँधने पर पन्द्रह ही प्रकृतियाँ भुजगारसंक्रमके योग्य हो गई । पुन. बन्धावलिप्रमाण कालके व्यतीत हो जाने पर और उस एकेन्द्रियके सत्रह समयप्रमाण आयुके शेष रहने पर पूर्वोक्त आवलिके कालके भीतर प्रथम समयसे लेकर पन्द्रह समयोंमें बढ़ाकर बाँधी हुई पन्द्रह प्रकृतियोंकी स्थितिको जिस क्रमसे बन्ध हुआ था उसी क्रमसे अनन्तानुबन्धी क्रोधमें संक्रमण करनेवाले जीवके अनन्तानुबन्धी क्रोधके पन्द्रह भुजगार समय प्राप्त होते हैं । पुन सोलहवें समयमें अद्धाक्षयसे अनन्तानुबन्धी क्रोधको

१ ता० प्रतौ —बंधिकोध इति पाठः

कदा। पुणो सोलससमयम्मि अद्धाक्खएण अणंताणुबंधिकोधेण वड्ढिदूण बद्धे सोलस भुजगारसमया। पुणो सत्तारससमए संकिलेसक्खएण अणंताणुबंधिकोधेण सह सव्वेसिं[1] कसायाणं वड्ढिदूण बद्धे सत्तारस भुजगारसमया। पुणो कालं कादूण एगविग्गहेण सण्णीसुप्पण्णपढमसमए असण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स अट्ठारस भुजगारसमया। पुणो सरीरं घेत्तूण सण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स एगूणवीस भुजगारसमया। १९। जहा अणंताणुबंधिकोधस्स उक्कस्सेण एगूणवीससमयाणं परूवणा कदा तहा माणादीणं पण्णारसण्हं पयडीणं पत्तेय पत्तेय परिवाडीए परूवणा कायव्वा।

§ ४२ णवणोकसायाणं पि एवं चेव वत्तव्वं। णवरि सत्तारससमयाहियआवलिया सेसे आउए आवलियपढमसमयप्पहुडि कोधादिसोलसकसायाणं परिवाडीए अद्धाक्खएण सोलससमयमेत्तकालं वड्ढिदूण बंधिय पुणो सत्तारससमए संकिलेसक्खएण सव्वासिं चेव सोलसपयडीणं भुजगारं कादूण पुणो बंधावलियादिक्कंतकसायट्ठिदिं णव णोकसायाणमुवरि बंधपरिवाडीए संकममाणस्स णोकसायाणं सत्तारस भुजगारसमया। पुणो एगविग्गहेण सण्णीसुप्पण्णपढमसमए असण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स अट्ठारस भुजगारसमया। पुणो सरीरगहिदपढमसमए सण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स एगूणवीस भुजगारसमया। जहा पंचिंदियमस्सिदूण भुजगारस्स एगूणवीससमयाणं परूवणा कदा तहा विगलिंदिए जीवे वि अस्सिदूण कायव्वा।

बढ़ाकर बाँधने पर सोलह भुजगार समय होते हैं। पुनः सत्रहवें समयमें संक्लेशक्षयसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ सब कषायोंकी बढ़ाकर बाँधनेपर सत्रह भुजगारसमय होते हैं। पुनः मरकर एक मोड़ाके द्वारा संज्ञियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञियोंकी स्थितिको बाँधनेवाले उस जीवके अठारह भुजगार समय होते हैं। पुनः शरीरको ग्रहण करके संज्ञीके योग्य स्थितिको बाँधनेवाले उस जीवके उन्नीस भुजगार समय होते हैं १९। मूलमें जिस प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोधके उत्कृष्टरूपसे उन्नीस भुजगार समयोंका कथन किया है उसीप्रकार मानादिक पन्द्रह प्रकृतियोंके १९ भुजगार समयोंका क्रमसे अलग अलग कथन कर लेना चाहिये।

§ ४२. नौ नोकषायोंका भी इसीप्रकार कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जिस एकेन्द्रिय जीवके आयुमें सत्रह समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहे उसके आवलिके प्रथम समयसे लेकर क्रोधादि सोलह कषायोंका क्रमसे अद्धाक्षयके द्वारा सोलह समय तक स्थिति बढ़ाकर बन्ध करावे। पुनः आवलिके सत्रहवें समयमें संक्लेशक्षयसे सभी सोलह प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिका बन्ध करावे। पुनः बन्धावलिके व्यतीत हो जाने पर बन्धक्रमसे उन कषायोंकी स्थितियोंका नौ नोकषायोंमें संक्रमण करावे। इस प्रकार संक्रमण करनेवाले जीवके नौ नोकषायोंके सत्रह भुजगार समय प्राप्त होते हैं। पुनः एक मोड़ेके द्वारा संज्ञियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें असंज्ञियोंकी स्थितिको बाँधनेवाले उस पूर्वोक्त एकेन्द्रिय जीवके अठारह भुजगार समय होते हैं। पुनः शरीर ग्रहण करनेके प्रथम समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिको बाँधनेवाले उस जीवके उन्नीस भुजगार समय होते हैं। यहाँ जिस प्रकार एकेन्द्रियोंका आश्रय लेकर भुजगार स्थितिविभक्तिके उन्नीस समयोंका कथन किया है उसी प्रकार विकलेन्द्रिय जीवोंका आश्रय लेकर भी कथन करना चाहिये।

---

1. आ० प्रतौ सव्वेसिं कसायाणं वड्ढिदूण इति पाठः।

४३. इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणमवट्ठिदकालो कधमुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तमेत्तो ? ण, कसायाणमंतोकोडाकोडिसागरोवममेत्तट्ठिदिमवट्ठिदमरूवेण अंतोमुहुत्तं कालं बंधिय बंधाव लियादिक्कंतकसायट्ठिदिं पुव्वुत्तचदुण्हं पयडीणमुवरि अंतोमुहुत्तं संकामिदे इत्थि-पुरिस-हस्स-रदीणमवट्ठिदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो। एसो अवट्ठिदकालो कत्थ गहिदो ? सण्णीसु। कुदो ? तत्थ इत्थि पुरिस हस्स-रदीणं बंधगद्धाए बहुत्तुवलंभादो। बारसकसाय-

---

विशेषार्थ—यहाँ सोलह कषायोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल १९ समय बतलाया है। इसके लिये दो पर्यायोंका ग्रहण किया है, क्योंकि एक पर्यायकी अपेक्षा १९ भुजगार समय नहीं प्राप्त होते। ऐसा नियम है कि सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका परस्परमें संक्रमण होता है। इसके लिये यह व्यवस्था है कि जिस समय जिस प्रकृतिका बन्ध होता है उसमें अन्य सजातीय प्रकृतिका संक्रमण होता है। चूँकि यहाँ अनन्तानुबन्धी क्रोधकी भुजगार स्थितिके उत्कृष्ट कालको प्राप्त करना है अतः ऐसा एकेन्द्रिय या विकलेन्द्रिय जीव लो जिसकी वर्तमान आयु एक आवलि और सत्रह समय शेष रही हो उसने पन्द्रह समयोंमें अनन्तानुबन्धी क्रोधको छोड़कर शेष पन्द्रह कषायोंकी स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ा बढ़ाकर बाँधी। पहले समयमें अनन्तानुबन्धी मानकी स्थितिको सत्तामें स्थित स्थितिसे बढ़ाकर बाँधा। दूसरे समयमें अनन्तानुबन्धी मायाकी स्थितिको अनन्तानुबन्धी मानकी स्थितिसे बढ़ाकर बाँधा इत्यादि। तदनन्तर एक आवलि कालके व्यतीत हो जाने पर उसी क्रमसे इनका अनन्तानुबन्धी क्रोधमें संक्रमण किया। इस प्रकार भुजगारके पन्द्रह समय तो ये प्राप्त हुए। अब रहे चार समय सो सोलहवें समयमें अद्धाक्षयसे उसने अनन्तानुबन्धी क्रोधकी स्थितिको बढ़ाकर बाँधा। सत्रहवें समयमें सक्लेशक्षयसे अनन्तानुबन्धी क्रोधके साथ सब कषायोंकी स्थितिको बढ़ाकर बाँधा। इस प्रकार भुजगारके सत्रह समय तो एकेन्द्रिय या विकलत्रयके प्राप्त हुए। अब यह जीव मरकर एक विग्रहसे संज्ञी पचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ, इसलिये उसने विग्रहकी अवस्थामें असंज्ञीके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधा और दूसरे समयमें शरीर ग्रहणकर लेनेसे संज्ञी पञ्चेन्द्रियके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधा। इस प्रकार भुजगार के १९ समय प्राप्त हुए। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धी मान आदिके और नौ नोकषायोंके १९ भुजगार समय प्राप्त होते हैं। किन्तु नौ नोकषायोंके सम्बन्धमें इतनी विशेषता है कि सोलह कषायोंका अद्धाक्षयसे उत्तरोत्तर बढ़ाकर बन्ध करावे। तदनन्तर सत्रहवें समयमें सक्लेशक्षयसे स्थिति बढ़ाकर बन्ध करावे। पुनः एक आवलि हो जानेपर इनका नौ नोकषायोंमें सत्रह समयके द्वारा संक्रमण करावे। तदनन्तर इस जीवको संज्ञियोंमें उत्पन्न कराकर पूर्वोक्त प्रकारसे दो भुजगार समय और प्राप्त करे। इस प्रकार नौ नोकषायोंके १९ भुजगार समय प्राप्त होते हैं।

§ ४३. शंका—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका अवस्थित काल उत्कृष्ट रूपसे अन्तर्मुहूर्त कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जब कोई जीव कषायोंकी अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिको अवस्थितरूपसे अन्तर्मुहूर्त कालतक बाँधकर पुनः बन्धावलिके व्यतीत होने पर उस स्थितिका पूर्वोक्त चार प्रकृतियोंमें अन्तर्मुहूर्त कालतक संक्रमण करता है तब उस जीवके स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी अवस्थितस्थितिविभक्तिका अन्तर्मुहूर्त काल पाया जाता है।

शंका—यह अवस्थित काल कहाँ पर ग्रहण किया गया है ?

समाधान—संज्ञियोंमें।

शंका—यह अवस्थित काल संज्ञियोंमें ही क्यों ग्रहण किया गया है ?

णवणोकसायाणमुवसमसेढिम्मि अंतरकरणं कादूण सव्वोवसमे कदे अवट्ठिदकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदि विदियट्ठिदीए ट्ठिदणिसेगाणमवट्ठिदाए गलणाभावादो सो किण्ण घेप्पदि ? ण, घडियाजलं व कम्मक्खंधट्ठिदिसमएसु पडिसमयं गलमाणेसु कम्मट्ठिदीए अवट्ठिदभावविरोहादो। णिसेगेहि अवट्ठिदत्तं जइवसहाइरियो णेच्छदि त्ति कुदो णव्वदे ? सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदस्स अंतोमुहुत्तं मोत्तूण उक्कस्सेण एगसमयपरूवणादो।

* अणंताणुबंधिचउक्कस्स अवत्तव्वं जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।

समाधान—क्योंकि यहाँपर स्त्रीवेद पुरुषवेद, हास्य और रतिका बन्धकाल बहुत पाया जाता है।

शंका—उपशमश्रेणीमें अन्तरकरण करके सर्वोपशम कर लेनेपर बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अवस्थितकाल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि वहाँपर द्वितीय स्थितिमें स्थित निषेक अवस्थित रहते हैं उनका गलन नहीं होता है अतः इस अवस्थितकालका ग्रहण क्यों नहीं किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँपर घटिकायन्त्रके जलके समान कर्मस्कन्धकी स्थितिके समय प्रत्येक समयमें गलते रहते हैं, अतः वहाँपर कर्मस्थितिका अवस्थितपना माननेमें विरोध आता है।

शंका—यतिवृषभ आचार्यने निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितपनेको स्वीकार नहीं किया है यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—चूँकि यतिवृषभ आचार्यने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिका उत्कृष्ट अवस्थितकाल अन्तर्मुहूर्त न कहकर एक समय कहा है। इससे मालूम पड़ता है कि यतिवृषभ आचार्यको निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितकाल इष्ट नहीं है।

विशेषार्थ—बात यह है कि जब कोई जीव बारह कषाय और नौ नोकषायोंका उपशम कर लेता है तब उसके उक्त प्रकृतियोंके सब निषेक अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित रहते हैं उनमें उत्कर्षण, आदि कुछ भी नहीं होता। इसपर शंकाकार कहता है कि अवस्थित विभक्तिका यह काल क्यों नहीं किया जाता है। इसका जो समाधान किया गया है उसका भाव यह है कि यद्यपि उक्त प्रकृतियोंके निषेक अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित रहते हैं यह ठीक है फिर भी जिस प्रकार घटिकायन्त्रका जल एक एक बूँदरूपसे प्रति समय घटता जाता है उसी प्रकार उनकी स्थिति भी प्रति समय एक एक समय घटती जाती है, क्योंकि अन्तरकरण करनेके समय उनकी जितनी स्थिति रहती है अन्तरकरणकी समाप्तिके समय वह अन्तर्मुहूर्त कम हो जाती है, अतः उपशमश्रेणिमें अवस्थित विभक्ति नहीं प्राप्त होती। इसपर फिर शंकाकार कहता है कि स्थिति भले ही घटती जाओ पर निषेक तो एक समान बने रहते हैं, अतः निषेकोंकी अपेक्षा वहाँ अवस्थितविभक्ति बन जायगी। इसका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यतिवृषभ आचार्यने निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितविभक्तिको नहीं स्वीकार किया है। इसका प्रमाण यह है कि यदि उन्होंने निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितपनेको स्वीकार किया होता तो वे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिके उत्कृष्ट अवस्थितकालको एक समयप्रमाण न कहकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण कहते, क्योंकि एक अन्तर्मुहूर्त कालतक उनका भी उपशमभाव देखा जाता है।

* अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ४४. कुदो ? अणंताणु०चउक्कं णिस्संतीकयसम्माइट्ठिणा मिच्छत्ते सासणसम्मत्ते वा पडिवण्णे तस्स पढमसमए चेव अणंताणु०चउक्कस्स ट्ठिदिसंतुप्पत्तीदो। कुदो असंतस्स अणंताणु०चउक्कस्स उप्पत्ती ? ण, मिच्छत्तोदएण कम्मइयवग्गणक्खंधाण-मणंताणु०चउक्कसरूवेण परिणमण पडि विरोहाभावादो। सासणे कुदो तेसिं सतुप्पत्ती ? सासणपरिणामादो। को सासणपरिणामो ? सम्मत्तस्स अभावो तच्चत्थेसु असद्दहणं। सो केण जणिदो ? अणंताणुबंधीणमुदएण। अणंताणुबंधीणमुदओ कुदो जायदे। परिणामपच्चएण।

*** सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वकम्मंसिओ केव-चिरं कालादो होदि ?**

§ ४५ सुगमं।

*** जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ।**

§ ४६. तं जहा—पुव्वुप्पण्णसम्मत्तसंतकम्ममिच्छाइट्ठिणा सम्मत्तसंतकम्मस्सुवरि दुसमयुत्तरादिमिच्छत्तट्ठिदिं बंधिय गहिदसम्मत्तस्स पढमसमए भुजगारो होदि। समयुत्तर-

§ ४४ क्योंकि जिस सम्यग्दृष्टि जीवने अनन्तानुबन्धी चतुष्कको निःसत्त्व कर दिया है वह जब मिथ्यात्व या सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त होता है तब मिथ्यात्व या सासादनके प्रथम समयमें ही अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्थितिसत्त्व पाया जाता है।

शंका—असद्रूप अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी मिथ्यात्वमें उत्पत्ति कैसे हो जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके उदयसे कार्मणवर्गणास्कन्धोंके अनन्तानुबन्धी चतुष्क-रूपसे परिणमन करनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—सासादनमें उनकी सत्तारूपसे उत्पत्ति कैसे हो जाती है ?

समाधान—सासादनरूप परिणामोंसे।

शंका—सासादनरूप परिणाम किसे कहते हैं ?

समाधान—तत्त्वार्थोंमें अश्रद्धानलक्षण सम्यक्त्वके अभावको सासादन रूप परिणाम कहते हैं।

शंका—वह सासादनरूप परिणाम किस कारणसे उत्पन्न होता है ?

समाधान—अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उदयसे होता है।

शंका—अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उदय किस कारण से होता है ?

समाधान—परिणामविशेषके कारण अनन्तानुबन्धीचतुष्कका उदय होता है।

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थिति-विभक्तिवाले जीवका कितना काल है ?**

§ ४५ यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।**

§ ४६ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिसने पहले सम्यक्त्वसत्कर्मको उत्पन्न कर लिया है ऐसा कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वसत्कर्मके ऊपर दो समय अधिक इत्यादि-रूपसे मिथ्यात्वकी स्थितिको बाँधकर सम्यक्त्वको ग्रहण करता है तब उसके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यत्वकी भुजगारस्थितिविभक्ति होती है। तथा एक समय अधिक

मिच्छत्तट्ठिदिं घादिय गहिदसम्मत्तस्स पढमसमए अवट्ठिदविहत्तीए कालो एगसमओ होदि, बिदियसमए अप्पदरविहत्तीए समुप्पत्तीदो। उवसमसम्मत्तद्धाए दंसणतियट्ठिदीए णिसेगाणं बिदियट्ठिदीए अवट्ठिदाणं गलणाभावादो अवट्ठिदकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भइ, सो किण्ण गहिदो? ण, तिण्हं कम्माणं कम्मट्ठिदिसमएसु अणुसमयं गलमाणेसु ट्ठिदीए अवट्ठाणविरोहादो। ण णिसेगाणं ट्ठिदित्तमत्थि, दव्वस्स पज्जयभावविरोहादो। णिस्संतकम्मियएण मिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते गहिदे एगसमयमवत्तव्वं होदि, पुव्वमविज्जमाण-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंताणमेत्थि समुप्पत्तीदो। तस्स कालो एगसमओ चेव, बिदियसमए अप्पदरसमुप्पत्तीदो।

* अप्पदरकम्मंसिओ केवचिरं कालादो होदि?

§ ४७. सुगमं।

* जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

§ ४८. कुदो? णिस्संतकम्मियएण मिच्छाइट्ठिणा पढमसम्मत्तं घेत्तूण पढमसमए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवत्तव्वं काऊण बिदियसमए अप्पदरं करिय सव्वजहण्णंतो-

---

मिथ्यात्वकी स्थितिको घातकर जिसने सम्यक्त्वको ग्रहण किया है उसके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वकी अवस्थितविभक्तिका काल एक समय प्राप्त होता है, क्योंकि दूसरे समयमें अल्पतरविभक्ति उत्पन्न हो जाती है।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके कालमें तीन दर्शनमोहनीयकी स्थितिके निषेक द्वितीय स्थितिमें अवस्थित रहते हैं अतः उनका गलन नहीं होनेके कारण अवस्थितकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्राप्त होता है, उसे यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँपर तीनों कर्मोंकी कर्मस्थितिके समयोंके प्रत्येक समयमें गलते रहनेपर स्थितिका अवस्थान माननेमें विरोध आता है। यदि कहा जाय कि निषेकोंको स्थितिपना प्राप्त हो जायगा सो भी बात नहीं है, क्योंकि द्रव्यको पर्यायरूप माननेमें विरोध आता है। अर्थात् निषेक द्रव्य हैं और उनका एक समयतक कर्मरूप रहना आदि पर्याय है। चूँकि द्रव्यसे पर्याय कथंचित् भिन्न है, अतः पर्यायके विचारमें द्रव्यको स्थान नहीं। जिसके सम्यक्त्वकर्मकी सत्ता नहीं है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्वको ग्रहण करता है तब उसके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें एक समयतक अवक्तव्यस्थितिविभक्ति होती है, क्योंकि पहले अविद्यमान सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्त्वकी इसके उत्पत्ति देखी जाती है। इस अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका काल एक समय ही है, क्योंकि दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति उत्पन्न हो जाती है।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर स्थितिविभक्तिसत्कर्मवाले जीवका कितना काल है?

§ ४७. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ४८. क्योंकि जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं है ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथमोपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करता है तब उसके सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य स्थितिविभक्ति होती है। तथा दूसरे समयसे अल्पतर स्थितिविभक्तिको प्रारम्भ करके अति लघु अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा वह यदि दर्शनमोहनीयका क्षय कर





मुहुत्तेण दंसणमोहणीए खविदे अप्पदरकालो जह० अंतोमुहुत्तं होदि[1] ।

❀ उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।

§ ४९. तं जहा—णिस्संतकम्मियमिच्छादिट्ठिणा सम्मत्ते गहिदे उवसमसम्मत्तद्धा समयूणमेत्ता अप्पदरकालो होदि । पुणो वेदगसम्मत्तं घेत्तूण तेण सम्मत्तेण पढमछावट्ठिं गमिय पुणो सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय वेदगसम्मत्तमुवणमिय तेण सम्मत्तेण विदियछावट्ठिं गमिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण पलिदो० असंखे०भागमेत्तेण सव्वुक्कस्सुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु उव्वेलिदेसु वेछावट्ठिसागरोवमाणि पलिदो० असंखे०भागेण सादिरेयाणि सम्मत्त सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सप्पदरकालो । एवं जइवसहाइरियसुत्तमस्सिदूण ओघपरूवणं करिय संपहि उच्चारणमस्सिदूण भुजगारकाल-परूवणं कस्सामो ।

§ ५०. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त० केवचिरं कालादो होदि ? जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समया । अप्पदर० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । अवट्ठि० केवचि० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । सोलसक०-णवणोक० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० एगूणवीस समया । अप्पदर-अवट्ठिदाणं मिच्छत्तभंगो । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगसमओ । अप्पद०

देता है तो उसके अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।

❀ उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है ।

§ ४९ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मका सत्त्व नहीं है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्व के ग्रहण करनेपर एक समयकम उपशम सम्यक्त्वका काल अल्पतरकाल होता है। पुन वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करके और उस सम्यक्त्वके साथ प्रथम छयासठ सागर काल बिताकर तदनन्तर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर पुन वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके और उसके साथ द्वितीय छयासठ सागर काल बिताकर पुन: मिथ्यात्वको प्राप्त करके जब वह पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण सर्वोत्कृष्ट उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देता है तब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका पल्योपमके असख्यातवें भाग से अधिक दो छयासठ सागर प्रमाण अल्पतर काल होता है ।

§ ५० इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके सूत्रके आश्रयसे ओघका कथन करके अब उच्चारणाके आश्रयसे भुजगारकालका कथन करते हैं—कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है–ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल चार समय है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । अवस्थित स्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकीभुजगारस्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एकसमय औरउत्कृष्टकाल उन्नीस समयहै। अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार,

1 ता० प्रतौ - मुहुत्तो होदि इति पाठः ।

जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। एवं तस-तसपज्ज० -भवसिद्धिया त्ति। णवरि तस-तसपज्ज० सम्म०-सम्मामि० अप्पद० जह० एगसमओ।

§ ५१ आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्तस्स भुज० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया। तं जहा—असण्णिपंचिंदियस्स दोविग्गहं काऊण णेरइएसु उववण्णस्स विदिय समए अद्धाक्खएण एगो भुजगारसमओ। तदियसमए तट्ठिदिपरिणामेहि चेव सण्णिट्ठिदिं बंधमाणस्स विदिओ भुजगारसमओ। संकिलेसक्खएण विणा तदियसमए कथं सण्णिट्ठिदिं बंधदि ? ण, संकिलेसेण विणा सण्णिपंचिंदियजादिमस्सिदूण ट्ठिदिबंधवड्ढीए उवलंभादो। चउत्थसमए संकिलेसक्खएण तदिओ भुजगारसमओ। एवं मिच्छत्तभुजगारस्स तिण्णि समया परूविदा। अहवा अद्धाक्खएण संकिलेसक्खएण च वड्ढिदूण बंधमाणस्स बे समया। एस पाढो एत्थ पहाणभावेण घेत्तव्वो। अप्पदर० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि। अवट्ठि० ओघं। बारसक०-णवणोक० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० सत्तारस समया। अट्ठारससमयमेत्तभुजगारकालो किमेत्थ णोवलब्भदे ?

अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ बत्तीस सागर है। इसी प्रकार त्रस, त्रस पर्याप्त अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि त्रस और त्रस पर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय है।

विशेषार्थ—यद्यपि ओघसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तसे कम प्राप्त नहीं होता तो भी त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंके यह एक समय बन जाता है, क्योंकि जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रह गया है उसके त्रस और त्रसपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होनेपर वहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय देखा जाता है।

§ ५१ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगारस्थितिविभक्तिका कितना काल है ? जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। उत्कृष्टकाल तीन समय इस प्रकार है—जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव दो मोड़े लेकर नारकियोंमें उत्पन्न हुआ है उसके दूसरे समयमें अद्धाक्षयसे एक भुजगार समय होता है। तीसरे समयमें स्थितिके उसी परिणामसे ही संज्ञीकी स्थितिको बाँधते हुए उसके दूसरा भुजगार समय होता है।

शंका—संक्लेशक्षयके बिना तीसरे समयमें वह जीव संज्ञीकी स्थितिको कैसे बाँधता है ?

समाधान—क्योंकि संक्लेशके बिना संज्ञी पंचेन्द्रिय जातिके निमित्तसे उसके स्थितिबन्धमें वृद्धि पाई जाती है।

तथा चौथे समयमें संक्लेशक्षयसे उसके तीसरा भुजगार समय होता है। इस प्रकार नारकियोंके मिथ्यात्वकी भुजगारस्थितिके तीन समयोंका कथन किया। अथवा अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे स्थिति बढ़ाकर बाँधनेवाले नारकीके दो भुजगार समय होते हैं। यह पाठ यहाँ-पर प्रधानरूपसे लेना चाहिये। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है।

ण, अट्ठारसमस्स भुजगारसमयस्स विचारिज्जमाणस्साणुवलंभादो। अप्पदर०-अवट्ठिद० मिच्छत्तभंगो। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि अवत्तव्व० ओघं। सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो०देसूणाणि। सेसमोघं

§ ५२. पढमपुढवि० एवं चेव। णवरि सव्वेसिमप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। विदियादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छत्त० भुज० ज० एगस०, उक्क० बे समया। अप्प० ज० एगस०, उक्क० सगसगट्ठिदी देसूणा। अवट्ठि० ओघं। बारसक०-

---

शंका—यहाँपर अठारह समयप्रमाण भुजगारकाल क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अठारहवाँ भुजगार समय विचार करनेपर बनता नहीं, अतः यहाँ उसे स्वीकार नहीं किया है।

बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कथन इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्ति ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। शेष कथन ओघके समान है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन या दो समय घटित करके बतलाया है। साथ ही यह सूचना भी की है कि यहाँ दो समयवाला पाठ प्रधान है। मालूम होता है कि यह सूचना बहुलताकी अपेक्षासे की है। एक तो असंज्ञी जीव नरकमें कम उत्पन्न होते हैं। उसमें भी पहले नरकमें ही उत्पन्न होते हैं। फिर भी सर्वत्र भुजगार स्थितिके तीन समय प्राप्त होना शक्य नहीं है। हाँ दो समय सातों नरकोंमें प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि वीरसेन स्वामीने दो समयवाली मान्यताको मुख्यता दी। तथा नरकमें वेदकसम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, अत इस अपेक्षासे वहाँ मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। तथा किसी भी विवक्षित कषाय और नोकषायकी भुजगार स्थितिके नरकमें सत्रह समय ही बनते हैं, क्योंकि सक्रमणकी अपेक्षा पन्द्रह, अद्धाक्षयकी अपेक्षा एक और सक्लेशक्षयकी अपेक्षा एक इस प्रकार एक भवकी अपेक्षा भुजगार के कुल सत्रह समय ही प्राप्त होते हैं। सामान्यसे जो भुजगारके उन्नीस समय बतलाये हैं वे दो पर्यायोंकी अपेक्षा घटित किये गये हैं। पर यहाँ केवल एक नरक पर्याय ही विवक्षित है, अत सत्रह समयसे अधिक नहीं बनते। यही कारण है कि वीरसेन स्वामीने नरकमें भुजगारके अठारहवें समयका भी निषेध कर दिया है। किन्तु नौ नोकषायोंके सत्रह समय घटित करनेमें जो विशेषता ओघप्ररूपणामें बतला आये हैं वह यहाँ भी जान लेनी चाहिये।

§ ५२ पहली पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सभी प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है।

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थिति-

णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० सत्तारस समया। सेस० मिच्छत्तभंगो। अणंताणु०चउक्क० एव चेव। णवरि अवत्त० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सेस० ओघं।

§ ५३ तिरिक्ख० मिच्छत्त० भुज० ओघं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि। अवट्ठि० ओघं। बारसक०-णवणोक०-अणंताणु०चउक्क० अप्प० मिच्छत्तभंगो। सेस० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपलि० देसू०। सेसमोघं।

§ ५४ पंचिंदियतिरि०-पंचि०तिरिक्खपज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त-सोल-

---

विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। तथा शेष अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कथन इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यस्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। तथा शेष स्थितिविभक्तियोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंके सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल यद्यपि कुछ कम तेतीस सागर बतला आये हैं पर प्रथमादि नरकोंमें वह कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि जिस नरककी जितनी उत्कृष्ट स्थिति होगी उससे कुछ कम काल तक ही उस नरकका नारकी अल्पतर स्थितिके साथ रह सकता है। तथा सामान्यसे नारकियोंके मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका जो उत्कृष्ट काल तीन समय या दो समय बतलाया है वह पहले नरकमें तो भविकल्प बन जाता है किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें असंज्ञी जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता है, अत वहाँ तीन समयवाला विकल्प नहीं बनता है। शेष कथन सुगम है।

§ ५३ तिर्यंचोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक तीन पल्य है। तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। बारह कषाय नौ नोकषाय और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है। तथा शेष स्थितिविभक्तियोंका काल ओघके समान है सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तीन पल्य है। तथा शेष स्थितिविभक्तियोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय बन जाता है, इसलिये इसे ओघके समान कहा। तथा अल्पतर स्थितिका जो साधिक तीन पल्य कहा है इसका कारण यह है कि भोगभूमिमें भी तिर्यंचोंके मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थिति ही होती है इसलिये अल्पतर स्थितिके तीन पल्य तो ये हुये तथा इसमें पूर्व पर्यायका अन्तर्मुहूर्त और सम्मिलित कर देना चाहिये। इस प्रकार अल्पतर स्थितिका साधिक तीन पल्य प्राप्त हो जाता है। तथा यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जो उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य कहा है सो यह, जिसने उत्तम भोगभूमि के तिर्यंचमें उत्पन्न होकर अतिशीघ्र वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अन्ततक वेदकसम्यक्त्वके साथ रहा उसकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि इसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति उत्तरोत्तर अल्प अल्प होती जाती है। शेष कथन सुगम है।

§ ५४ पंचेन्द्रियतिर्यंच पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिमती जीवोंमें

सक०-णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि समया अट्ठारस समया। सेसं तिरिक्खोघं। णवरि पंचिं०तिरि०पज्ज० इत्थिवेद० भुजगार० जह० एगस०, उक्क० सत्तारस समया। जोणिणि० पुरिस० णवुंस० भुज० ज० एगस०, उक्क० सत्तारस समया।

§ ५५. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। सेसं पंचिं०तिरिक्खभंगो। णवरि इत्थि-पुरिस० ज० एगस०, उक्क० सत्तारस समया। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतो-

---

मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा तीन समय और शेषकी अपेक्षा अठारह समय है। तथा शेष कथन सामान्य तिर्यंचोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। तथा योनिमती तिर्यंचोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है।

विशेषार्थ—जिस प्रकार नारकियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल तीन समय घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ उक्त तीन प्रकारसे तिर्यंचोंके भी घटित कर लेना चाहिये। तथा उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल अठारह समय प्राप्त होता है। जिसका खुलासा इस प्रकार है- उक्त तीनों प्रकारके तिर्यंच असंज्ञी भी होते हैं और संज्ञी भी। अब ऐसा असंज्ञी जीव लो जिसकी आयुमें एक आवलि और सोलह समय शेष है। तब उसने विवक्षित कषायको छोड़कर शेष पन्द्रह कषायोंकी उत्तरोत्तर भुजगार स्थितिका पन्द्रह समयमें बन्ध किया। पश्चात् एक आवलिके बाद जब आयुमें सोलह समय शेष रहे तब उसने उन भुजगार स्थितियोंका पन्द्रह समयके द्वारा विवक्षित कषायमें संक्रमण किया। अनन्तर सोलहवें समयमें उसने अद्धाक्षयसे भुजगार स्थितिको बाँधा और सत्रहवें समयमें ऋजुगतिसे संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर संज्ञियोंके योग्य स्थितिका बन्ध किया। पश्चात् अठारहवें समयमें संक्लेशक्षयसे भुजगार स्थितिको बाँधा। इस प्रकार यहाँ भुजगार स्थितिके कुल अठारह समय प्राप्त होते हैं। किन्तु तिर्यंच पचेन्द्रिय पर्याप्तकके स्त्रीवेदकी और योनिमती तिर्यंचके पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी भुजगार स्थितिके सत्रह समय ही प्राप्त होते हैं जिसका उल्लेख मूलमें किया ही है। बात यह है कि जो जिस वेदके साथ उत्पन्न होता है उसके पूर्व पर्यायके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें वह वेद ही बँधता है, अत योनिमती तिर्यंचमें उत्पन्न होनेवाले जीवके पूर्व पर्यायके अन्तमें पुरुष व नपुंसक वेदका बँध नहीं होनेसे सोलह कषायोंका उक्त वेदोंमें संक्रमण भी नहीं होता, अत उक्त वेदोंके भुजगारके अठारह समय घटित नहीं होते। इसीप्रकार पर्याप्त तिर्यंचके स्त्रीवेदके भुजगारका काल अठारह समय न रहकर सत्रह समय कहा है। सो यह सत्रह समय स्वस्थानकी अपेक्षा जानना चाहिये।

§ ५५, पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतरस्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है तथा शेष स्थितिविभक्तियोंका भंग तिर्यंचोंके समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी

मुहुत्त । एवं मणुसअपज्ज० । णवरि छव्वीसं पयडीणं भुज० ज० एयस०, उक्क० बे समया सत्तारस समया ।

§ ५६ मणुसतिए मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० भुज० ज० एयस०, उक्क० बेसमया सत्तारस समया । सेसं पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि मणुसपज्ज० बारसक०-णवणोक० अप्प० ज० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० सादिरेयाणि पुव्वकोडितिभागेण ।

§ ५७ देवाणं णारयभंगो । णवरि मिच्छत्तस्स सम्मत्त०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० अप्प० ज० एयस०, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि । भवण०-वाण० एवं चेव । णवरि अप्पदर० सगट्ठिदी देसूणा । जोदिसियादि जाव सहस्सारोत्ति विदियपुढविभंगो ।

प्रकार मनुष्य अपर्याप्तक जीवोंके जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय तथा शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है ।

§ ५६ सामान्य पर्याप्त और मनुष्य इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय तथा शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है । तथा शेष भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है । इतनी विशेषता है कि मनुष्य पर्याप्तकोंमें बारह कषाय और नोकषायों की अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पूर्वकोटित्रिभागसे अधिक तीन पल्य प्रमाण है ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंकी आयु अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होती, इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा । तथा इनके स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल अठारह समय प्राप्त न होकर सत्रह समय ही प्राप्त होता है । इसका विशेष खुलासा जिस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच आदिके कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है । मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तकोंके यद्यपि सब प्रकृतियोंकी भुजगार आदि स्थितियोंका काल पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान ही होता है फिर भी छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मनुष्योंमें संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद नहीं होते, अतः इनके मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल दो समय और सोलह कषाय तथा नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय ही प्राप्त होता है । उक्त प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिके उत्कृष्ट कालके विषयमें यही क्रम सामान्य पर्याप्तक और योनिमती मनुष्योंके जानना चाहिये । इन तीन प्रकारके मनुष्योंका शेष कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंके समान है किन्तु मनुष्य पर्याप्तकोंके बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है, क्योंकि जिस मनुष्य पर्याप्तकने आगामी भवकी आयुको बाँधकर तदनन्तर क्षायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लिया है उसके मनुष्य पर्याप्तक अवस्थाके रहते हुए उक्त कालतक अल्पतर स्थिति देखी जाती है ।

§ ५७ देवोंमें नारकियोंके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ मिथ्यात्व सम्यक्त्व सम्यग्मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तेतीस सागर है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँपर अल्पतरस्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । ज्योतिषियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्गतकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके





णवरि सोहम्मादिसु अप्प० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी। आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पद० जहण्णुक्क०ट्ठिदी। अणंताणु०चउक्क० अप्पदर० जह० एयसमओ, उक्क० सगसगट्ठिदी। अवत्तव्वं० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० जह० एयस०, उक्क० सगसगट्ठिदी। सेस० ओघं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वपयडी० अप्प० जहण्णुक्क० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी। णवरि सम्मत्त० अप्पदरस्स जह० एयस०। अणंताणु०चउक्क० अप्प० जह० अंतोमु०।

समान जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सौधर्मादिक स्वर्गों में अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अपनी स्थितिप्रमाण है। आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्टकाल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तथा अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। शेष कथन ओघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धतकके देवोंमें सब प्रकृतियों की अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय है। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है।

विशेषार्थ—सर्वार्थसिद्धिके देवोंके सब प्रकृतियोंकी उत्तरोत्तर अल्पतर स्थिति ही होती है, इसलिये सामान्य देवोंके सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तेतीस सागर कहा। भवन त्रिकमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते अतः यहाँ सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण प्राप्त होता है। तथा बारहवें स्वर्गतक सक्लेशानुसार स्थितिमें घटाबढी होती रहती है इसलिये यहाँ तक सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय भी प्राप्त होता है। किन्तु बारहवें स्वर्गके ऊपर यद्यपि सब प्रकृतियोंकी स्थिति उत्तरोत्तर अल्प ही होती जाती है फिर भी नौ ग्रैवेयकतकके जीव सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकारके होते हैं। तथा सम्यग्दृष्टिसे मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और मिथ्यादृष्टिसे सम्यग्दृष्टि भी। अतः यहाँ अनन्तानुबन्धी चतुष्क, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति अल्पतर और अवक्तव्य दो प्रकारकी बन जाती है। किन्तु शेष कर्मों की एक अल्पतर स्थिति ही प्राप्त होती है। तदनुसार २२ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल अपनी-अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है। किन्तु शेष छह प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की है ऐसा कोई एक जीव सासादनमें जाकर पहले समयमें अवक्तव्य स्थितिको प्राप्त हुआ और दूसरे समयमें अल्पतरस्थितिको प्राप्त करके यदि मर जाता है तो अनन्तानुबन्धीकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार उद्वेलनाकी अपेक्षा उक्त स्थानोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय बन जाता है। तथा अनुदिश आदिमें बाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु शेष छह प्रकृतियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर जो अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना कर देता है उसके अनन्तानुबन्धीकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त

§ ५८. एइंदिएसु मिच्छत्त० भुज० ज० एयसमओ, उक्क० बेसमया। अप्प० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अवट्ठि० ओघं। सोलसक०-णवणोक० भुज० बिदियपुढविभंगो। अप्प० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं बादरेइंदिय०-सुहुमेइंदिय०-पुढवि०-बादरपुढवि०-सुहुमपुढवि०-आउ०-बादरआउ०-सुहुमआउ०-तेउ०-बादरतेउ०-सुहुमतेउ०-वाउ०-बादरवाउ०-सुहुमवाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेय-वणप्फदि०-णिगोद०-बादरसुहुमाणं। बादरेइंदियअपज्ज०-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्ताणं मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० एइंदियभंगो। अप्पदर० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवं पंचकाय बादरअपज्ज०-सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं। बादरेइंदियपज्ज० विगलिंदिय० विगलिंदियपज्जत्ताणं मिच्छत्त० भुज० ज० एगस०, उक्क० बेसमया। अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० संखेज्जाणि वाससहस्साणि। अवट्ठि० ओघं। सोलसक०-णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० सत्तारस समया। अप्पद०-अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो। [सम्मत्त-सम्मा-

---

होता है। तथा सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय उत्कृष्टभेदके सम्यक्त्वकी अपेक्षा प्राप्त होता है।

§ ५८. एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमका असंख्यातवाँ भागप्रमाण है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका भंग दूसरी पृथिवीके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय सूक्ष्म एकेन्द्रिय पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, जलकायिक, बादर जलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, निगोद बादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवोंके जानना चाहिये। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका भंग एकेन्द्रियोंके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार पाँचों स्थावरकाय बादर अपर्याप्त, पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्मपर्याप्त और पाँचों स्थावरकाय सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल संख्यात हजार वर्ष है। तथा अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

मिच्छत्त० अप्प० मिच्छत्तभंगो।] विगलिंदियअपज्जत्ताणमेवं चेव। णवरि अप्पद० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०।

§ ५६. पंचिंदिय-पंचिं०पज्जत्ताणमोघं। णवरि भुज० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि अट्ठारस समया। सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एगसमयो[1]। पंचिंदिय-अपज्ज० पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०भंगो।

अल्पतर स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है। विकलेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके इसीप्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेपता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल दो समय अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयकी अपेक्षासे कहा है। तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय जो दूसरी पृथिवीमें वतला आये हैं वह एकेन्द्रियोंके भी वन जाता है, अतएव यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिका काल दूसरी पृथिवीके समान कहा है। एकेन्द्रियोंके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवक्तव्य व अवस्थित स्थिति नहीं होती, क्योंकि इनके ये पद सम्यग्दृष्टिके पहले समयमें ही सम्भव हैं। एकेन्द्रियोंमें सव प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्यके असख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि जो पचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर निरन्तर एकेन्द्रिय ही रहे आते हैं उन्हें सत्तामें स्थित स्थितिको घटाकर एकेन्द्रियके योग्य करनेमें पल्यका असख्यातवा भाग प्रमाण काल लगता है। मूलमें वादर एकेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमे भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिये इनमें सव प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। इसी प्रकार पाँचों स्थावरकाय वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और सूक्ष्म अपर्याप्त जीवोंके भी जानना चाहिये। वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंका उत्कृष्टकाल सख्यात हजार वर्ष है इसलिये इनमें सव प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल सख्यात हजार वर्ष कहा। तथा विकलेन्द्रिय अपर्याप्तकोंका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अत. इनमें सव प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ५६ पचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके ओघके समान जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें भुजगारका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा तीन समय तथा शेषकी अपेक्षा अठारह समय है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय है। पचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पचेन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी दोनों भेद सम्मिलित हैं, अत. इनमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल तीन समय तथा सोलह कषाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्टकाल अठारह समय वन जाता है। इन तीन और अठारह समयोंका विशेष खुलासा पहले किया ही है उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षा प्राप्त होता है। इस प्रकार यहाँ उक्त कथनमें ओघसे विशेपता है। शेप सव कथन ओघके समान है।

---

१ ता० प्रतौ समयो । पंचि-इति पाठ ।

§ ६० बादरपुढविपज्ज०-बादरआउ०पज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्ज० सव्वपयडी० भुज०-अवट्ठि० विदियपुढविभंगो। अप्पद० विगलिंदियपज्जत्तभंगो।

§ ६१ तसअपज्ज० छब्बीसपयडी० भुज०-अवट्ठि० ओघं। णवरि इत्थि०-पुरिस० भुज० सत्तारस समया। अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०[1]।

§ ६२ पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक०-सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। सेस० विदियपुढविभंगो। एवं वेउव्विय०। कायजोगि० ओघभंगो। णवरि सव्वेसिमप्प० उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। ओरालिय० मिच्छत्त० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० वे समया। अवट्ठि० ओघं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० बावीस वाससहस्साणि देसूणाणि। सोलसक०-णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० सत्तारस समया। अवट्ठि० ओघं। अप्पदर० सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-

§ ६० बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त जीवोंके सब प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका भंग दूसरी पृथिवीके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका भंग विकलेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है।

§ ६१ त्रस अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित स्थिति विभक्तियोंका भंग ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—सब अपर्याप्तक नपुंसक ही होते हैं, इसलिये त्रस अपर्याप्तकोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय ही प्राप्त होता है। तथा अपर्याप्तकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६२ पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष कथन दूसरी पृथिवीके समान है। इसी प्रकार वैक्रियिककाययोगी जीवोंके जानना चाहिये। काययोगियोंके ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। अवस्थितस्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा इन प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका और

[1] ता० प्रतौ सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं इति पाठो नास्ति।

मप्पदरस्स च ज० एगसमओ, उक्क० बावीस वस्ससहस्साणि देसूणाणि । सेसमोघं । ओरालियमिस्स० मिच्छत्त० भुज० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क अंतोमु० । सोलसक०–णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० अट्ठारस समया । अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त–सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । वेउव्वियमिस्स० अट्ठावीसपयडीणमप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । सेस० विदियपुढविभंगो । णवरि पदविसेसो जाणियव्वो । आहारकाय० सव्वपय० अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । आहारमिस्स० सव्वपय० अप्प० जहण्णुक्क० अंतोमु० । एवमुवसमसम्मत्त–सम्मामिच्छत्ताणं । कम्मइय० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज० ज० एगसमओ, उक्क० बे समया । अप्प०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया । सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस० । उक्क० तिण्णि समया । एवमणाहार० ।

सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है। शेष कथन ओघके समान है। औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अठारह समय है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। शेषका भंग दूसरी पृथिवीके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पदविशेष जानना चाहिये। आहारककाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। आहारकमिश्रकाययोगियोंमे सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल दो समय है। अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पाँचों मनोयोग, पाँचों वचनयोग और वैक्रियिककाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। औदारिककाययोगका उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष है, अत इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम बाईस हजार वर्ष कहा। औदारिकमिश्रकाययोगका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें भी इसी प्रकार समझना चाहिये। तथा इसी प्रकार आहारककाययोग और आहारकमिश्र-

§ ६३ वेदाणुवादेण इत्थि० मिच्छत्तस्स भुज० ज० एगसमओ, उक्कस्सेण तिण्णि समया। अप्प० ज० एगस०, उक्क० पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि। अवट्ठि० ओघं। बारसक०-णवणोक० भुज० ज० एगस०, उक्क० अट्ठारस समया। णवरि पुरिस०-णवुंस० सत्तारस समया। अप्प०-अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो। अणंताणु० चउक्क० एवं चेव। णवरि अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगस०। सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० अवत्तव्व० ओघं। अप्पद० ज० एगस०, उक्क० पणवण्णपलिदो० सादिरेयाणि। पुरिसवेद० पंचिंदियभंगो। णवरि इत्थि-णवुंस० भुज० उक्क० सत्तारस समया। णवुंस० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक०-भुज० अवट्ठि० ओघं। णवरि इत्थि-पुरिस० भुज० उक्क० सत्तारस समया। अप्प० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि। अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्वं ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि। सेस० ओघं। अवगदवेद० चउवीसपयडि० अप्प०

काययोगमें भी समझना चाहिये। इतना विशेषता है कि मिश्रयोगोंमें अवक्तव्य भंग नहीं होता। तथा आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें एक अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है। उपशमसम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्टकाल भी अन्तर्मुहूर्त है तथा इनमें एक अल्पतर स्थितिविभक्ति ही होती है इसलिये इनमें अल्पतर स्थितिके कथनको आहारकद्विकके समान कहा। कार्मण काययोगमें अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयकी अपेक्षा सर्वत्र भुजगारके दो समय ही प्राप्त होते हैं इसलिये इसमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल दो समय कहा। तथा इसका उत्कृष्टकाल तीन समय है इसलिये इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल तीन समय कहा। संसारी जीवोंके अनाहारक अवस्था कार्मणकाययोगमें ही होती है अतः इसके कथनको कार्मणकाययोगके समान कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६३ वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदवालोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल तीन समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम पचपन पल्य है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अठारह समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके पुरुषवेद और नपुंसकवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। तथा अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक पचपन पल्य है। पुरुषवेदी जीवोंके पंचेन्द्रियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस

ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। एवमकसा०-सुहुम०-जहाक्खादसंजदे त्ति।

§ ६४. चत्तारिक० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० ओघं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०।

§ ६५. मदि०-सुद० मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ओघं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो०[1] सादिरेयाणि। सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद०

सागर है। शेप कथन ओघके समान है। अपगतवेदियोंमे चौबीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थिति-विभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तमुंहूर्त है। इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

§ ६४ क्रोधादि चारों कषायवाले जीवोंमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—वेदमार्गणामें निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं। पहली तो यह कि विवक्षित वेदमें उस वेदके अतिरिक्त शेप वेदोंकी भुजगार स्थितिका उत्कृष्टकाल सत्रह समय होता है। दूसरी यह कि यद्यपि स्त्रीवेदी आदिका उत्कृष्टकाल सौ पल्य पृथक्त्व आदि है फिर भी इनमे मिथ्यात्व आदिकी अल्पतर स्थितिका काल उस वेदके उत्कृष्टकाल प्रमाण नहीं है। इनमेसे स्त्रीवेदमें मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका काल कुछ कम पचवन पल्य है, क्योंकि यहाँ सम्यग्दर्शनका जो उत्कृष्टकाल है वही यहाँ उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल प्राप्त होता है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विषयमें स्थिति इससे भिन्न है। बात यह है कि इनकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट-काल सम्यक्त्व व मिथ्यात्वके क्रमसे प्राप्त होते रहनेसे होता है और स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक पचवन पल्य प्राप्त होता है। तथा ओघमें सब प्रकृतियोंकी जो भुजगार आदि स्थिति कही है वह अधिकतर पुरुपवेद-की प्रधानतासे ही घटित होती है। पंचेन्द्रियोंमे भी वह अविकल बन जाती है, क्योंकि पुरुपवेदी पचेन्द्रिय ही होते हैं, अतः यहाँ पुरुषवेदमें भुजगार स्थिति आदिका काल पंचेन्द्रियोंके समान कहा। तथा नपुसकवेदमें २६ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि यहाँ सम्यग्दर्शनका जो उत्कृष्टकाल है वही उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। विशेप खुलासा जिस प्रकार स्त्रीवेदियोंके कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये। शेप कथन सुगम है। अवगतवेदमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थिति ही होती है। तथा इसका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। इसी प्रकार अकषायी, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके भी घटित कर लेना चाहिये। तथा क्रोधादि चारों कषायोंकी अल्पतर स्थिति का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है, अतः इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा। शेष कथन सुगम है।

§ ६५. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका

---

1 ता० प्रतौ सागरो० देसूणाणि इति पाठः।

जह० अंतोमु०,[1] उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। विहंग० मिच्छत्त-सोलसक० भुज० ज० एगस०, उक्क० तिण्णिपुव्वत्तिभंगो। अवट्ठि० ओघं। अप्प० जह० एगस०, उक्क० एक्कत्तीस सागरो० देसूणाणि। सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ६६ आभिणि०-सुद० ओहि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० अप्प० ज० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। णवरि अणंताणु० देसू०। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० ज० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। भुज० अवट्ठि०-अवत्त० णत्थि। मणपज्ज० अट्ठावीस पय० अप्प० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं संजद०—सामाइय०—छेदोव०-परिहार०-संजदासंजदा त्ति। णवरि सामाइय०-छेदोव० चउवीसपय० अप्प० जह० एयसमओ। असंज० ओघभंगो। णवरि अप्प० सादिरेय तेत्तीस सागरोवमाणि। सम्म० अप्प० जह० एगसमओ।

जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। विभंगज्ञानियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकालका भंग दूसरी पृथिवीके समान है। अवस्थित स्थिति विभक्तिका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल कुछ कम इकतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

§ ६६ आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा कुछ कम छयासठ सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है। यहाँ भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य विभक्तियाँ नहीं हैं। मनःपर्ययज्ञानियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है। इसी प्रकार संयत सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत परिहारविशुद्धिसंयत और संयतासंयत जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सामायिक संयत और छेदोपस्थापना संयत जीवोंमें चौबीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय है। असंयतोंमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। तथा सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय है।

विशेषार्थ—नौवें ग्रैवेयकमें मिथ्यात्व आदिकी अल्पतर स्थिति होती है। अब यदि वहाँ कोई मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न हुआ तो उसके आदि और अन्तमें भी अल्पतर स्थिति पाई जाती है, अतः मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके मिथ्यात्व आदि छब्बीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक इकतीस सागर कहा। तथा विभंगज्ञान अपर्याप्त अवस्थामें नहीं पाया जाता, इसलिये इसमें उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा। तथा मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण कालतक

1 ता० प्रतौ जह० एगस० इति पाठः।

§ ७०. सण्णि० पंचिंदियभंगो। एवमाहारीणं। णवरि सण्णि० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० भुज० उक्क० वे सत्तारस समया। असण्णि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० अप्पदर ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेस० ओरालियमिस्स०भंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

*** अंतरं।**

§ ७१. सुगममेदं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

*** मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदकम्मंसियस्स अंतरं जहण्णेण एगसमओ।**

§ ७२. कुदो? भुजगार अवट्ठिदविहत्तीओ एगसमयं कादूण विदियसमए अप्पदरं करिय तदियसए भुजगार-अवट्ठिदेसु एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो।

*** उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।**

§ ७३. त जहा—तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा भुजगार-अवट्ठिदाणमादिं कादूण पुणो तत्थेव अंतोमुहुत्तकालमप्पदरेणंतरिय तिपलिदोवमिएसुप्पज्जिय तेवट्ठिसागरोवमसदं भमिय मणुस्सेसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्ते गदे संकिलेस पूरेदूण भुज०-अवट्ठि०कदेसु लद्धमंतरं होदि।

---

§ ७० सञ्ज्ञी जीवोंके पचेन्द्रियोंके समान भग है। इसी प्रकार आहारक जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेपता है कि सञ्ज्ञियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय और शेपकी अपेक्षा सत्रह समय है। असञ्ज्ञियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जवन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

*** आगे अन्तरानुगमका अधिकार है।**

§ ७१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सम्हाल करना इसका फल है।

*** मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।**

§ ७२ क्योंकि जो कोई जीव भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक करके और दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति करके यदि तीसरे समयमें पुनः भुजगार और अवस्थित विभक्तियाँ करते हैं तो उनके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका केवल एक समय अन्तर पाया जाता है।

*** उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।**

§ ७३ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिन्होंने तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भुजगार और अवस्थितस्थितिविभक्तिका प्रारम्भ किया। पुनः वहीं पर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर स्थितिविभक्तिसे उन्हें अन्तरित किया। पुनः वे तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और एकसौ त्रेसठ सागर कालतक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और वहाँ पर उन्होंने अन्तर्मुहूर्त कालके बाद सक्लेशकी पूर्ति करके भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंको किया। इस प्रकार भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है।

* अप्पदरकम्मंसियस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७४ सुगममेदं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

§ ७५ कुदो ? मिच्छत्तस्स अप्पदरं करेमाणेण भुजगारमवट्ठिदं वा एगसमयं काऊण पुणो तदियसमए अप्पदरे कदे एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ७६ कुदो ? अप्पदरं करेंतेण भुज०-अवट्ठिदाणि अंतोमुहुत्तं काऊण अप्पदरे कदे अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

* सेसाणं पि णेदव्वं ।

§ ७७ जहा मिच्छत्तस्स णीदं तहा सेसपयडीणं पि णेदव्वं । एवं चुण्णिसुत्तयारेण पविदस्स उच्चारणमस्सिदूण परूवणं कस्सामो ।

§ ७८ अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस० उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि०

---

* मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवका अन्तरकाल कितना है ?

§ ७४ यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ ७५. क्योंकि मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिको करनेवाले जिस जीवने एक समयके लिए भुजगार या अवस्थित स्थितिविभक्तिको किया पुनः तीसरे समय में यदि वह अल्पतर स्थितिविभक्तिको करता है तो उसके अल्पतर स्थितिविभक्तिका एक समय अन्तर पाया जाता है।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ७६. क्योंकि अल्पतर स्थितिविभक्तिको करनेवाले जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त कालतक भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको किया। पुनः उसके अन्तर्मुहूर्त कालके बाद अल्पतर स्थितिविभक्तिके करनेपर मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ७७ जिस प्रकार मिथ्यात्वका अन्तरकाल कहा उसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी जानना चाहिए। इस प्रकार चूर्णिसूत्रके कर्ता यतिवृषभाचार्यके द्वारा सूचित हुए अर्थका उच्चारणाके आश्रयसे कथन करते हैं—

§ ७८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है।

§ ६७. चक्खु० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० अणंताणु०चउक्क०[1] अवत्तव्व० ओघं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं। सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्तव्वमोघं। अप्प० ज० एगस०, उक्क० बे छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। ओहिदंस० ओहिणाणिभंगो।

ही पाई जाती है अत उक्त तीनों अज्ञानोंमें इन दो प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा। आभिनिवोधिकज्ञान आदि सम्यग्ज्ञानोंमें केवल अल्पतर स्थिति ही पाई जाती है। किन्तु मनःपर्ययज्ञानको छोडकर इनका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर है इसलिये इनमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक छयासठ सागर कहा। किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्क इसका अपवाद है। बात यह है कि वेदक सम्यक्त्वके साथ अनन्तानुवन्धीका सत्त्व कुछ कम छयासठ सागर तक ही पाया जाता है इसलिये इसकी अल्पतरस्थितिका उत्कृष्टकाल कुछ कम छयासठ सागर कहा। तथा मनःपर्ययज्ञानका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है, अतः इसमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण कहा। मनःपर्ययज्ञानके समान सयत आदि मार्गणाओंमें भी जानना चाहिये, क्योंकि इनका जघन्य और उत्कृष्टकाल मनःपर्ययज्ञानके समान है। इतनी विशेषता है कि सामायिक और छेदोपस्थानाका जघन्यकाल एक समय भी है जो कि उपशान्तमोहसे च्युत हुए जीवके ही सम्भव है, क्योंकि ऐसा जीव एक समय तक अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें रहा और मरकर यदि देव हो जाता है तो उसके सामायिक और छेदोपस्थापना सयमका जघन्यकाल एक समय पाया जाता है। पर यहाँ २४ प्रकृतियोंकी सत्ता ही सम्भव है, अत २४ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय कहा। असयत मार्गणामें और सब काल तो ओघके समान बन जाता है किन्तु सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है। बात यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है, अतः असयममें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण कहा। तथा यहाँ कृतकृत्यवेदककी अपेक्षा सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है।

§ ६७ चक्षुदर्शनवाले जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है। अवधिदर्शनवाले जीवोंका भग अवधिज्ञानी जीवोंके समान है।

विशेषार्थ—चक्षुदर्शनमार्गणाका काल यद्यपि दो हजार सागर है पर इसमें अल्पतर स्थितिका काल इतना नहीं प्राप्त होता, इसलिये यह कहा है कि चक्षुदर्शनमें २६ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर है।

१ ता० प्रतौ चउक्क० [ओघ] अवत्तव्व० इति पाठः।

§ ६८ किण्ह-णील-काउ० मिच्छत्त० भुज० अवट्ठि० ओघं । अप्पद० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोवमाणि देसूणाणि । सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ओघं । अप्प० मिच्छत्तभंगो । अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एगस० । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्तव्व ओघं । अप्प० ज० एगस०, उक्क० तेत्तीस-सत्तारस-सत्तसागरोव० देसूणाणि । तेउ० सोहम्मभंगो । पम्म० सहस्सारभंगो । सुक्क० आणदभंगो । णवरि अप्प० तेत्तीस सागरो० सादिरेयाणि ।

§ ६९ अभव० छब्बीस० मदि०भंगो । सम्मादिट्ठि० आभिणि०भंगो । खइय सम्मा० एक्कवीसपय० अप्पद० ज० अंतोमुहुत्त, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । वेदग० मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-अणंताणु०चउक्क० ओहि०भंगो । णवरि उक्क० छावट्ठिसागरो० देसूणाणि । सम्मत्त-बारसक०-णवणोक० अप्प० ज० अंतोमु०, उक्क० छावट्ठिसागरोवमाणि । सासण० सव्वपयडि० अप्प० ज० एगस०, उक्क० छ आवलियाओ । मिच्छादिट्ठि० मदिअण्णाणिभंगो ।

यह ओघके समान घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इन दो प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि उद्वेलनाकी अपेक्षा इनकी अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है अतः यहाँ अल्पतर स्थितिका जघन्य काल एक समय कहा। शेष कथन सुगम है। तथा इसके आगे अन्य मार्गणाओंमें जो कालका निर्देश किया है उसका खुलासा पूर्व कथनसे हो जाता है, इसलिये पृथक् खुलासा नहीं किया।

§ ६८. कृष्ण नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंमें मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल क्रमसे कुछ कम तेतीस, कुछ कम सत्रह और कुछ कम सात सागरप्रमाण है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य और उत्कृष्टकाल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका काल ओघके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल क्रमसे कुछ कम तेतीस कुछ कम सत्रह और कुछ कम सात सागर है। पीतलेश्यावाले जीवोंके सौधर्मके समान भंग है। पद्मलेश्यावालोंके सहस्रारके समान भंग है। और शुक्ललेश्यावालोंके आनतकल्पके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि शुक्ल लेश्यामें अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है।

§ ६९. अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग मत्यज्ञानियोंके समान है। सम्यग्दृष्टियोंके आभिनिबोधिकज्ञानियोंके समान भंग है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें इक्कीस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अवधिज्ञानियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अल्पतर स्थितिविभक्तिका उत्कृष्ट काल कुछ कम छयासठ सागर है। सम्यक्त्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल छयासठ सागर है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवली है। मिथ्यादृष्टियोंके मत्यज्ञानियोंके समान भंग है।

§ ७०. सण्णि० पंचिंदियभंगो। एवमाहारीणं। णवरि सण्णि० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० भुज० उक्क० वे सत्तारस समया। असण्णि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० अप्पदर ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेस० ओरालियमिस्स०भंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

* अंतरं।

§ ७१. सुगममेदं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

* मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदकम्मंसियस्स अंतरं जहण्णेण एगसमओ।

§ ७२. कुदो ? भुजगार अवट्ठिदविहत्तीओ एगसमयं कादूण विदियसमए अप्पदरं करिय तदियसए भुजगार-अवट्ठिदेसु एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो।

* उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।

§ ७३. तं जहा—तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा भुजगार-अवट्ठिदाणमादिं कादूण पुणो तत्थेव अंतोमुहुत्तकालमप्पदरेणंतरिय तिपलिदोवमिएसुप्पज्जिय तेवट्ठिसागरोवमसदं भमिय मणुस्सेसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्ते गदे संकिलेसं पूरेदूण भुज०-अवट्ठि०कदेसु लद्धमंतरं होदि।

§ ७० सञ्ज्ञी जीवोंके पञ्चेन्द्रियोंके समान भग है। इसी प्रकार आहारक जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सञ्ज्ञियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय और शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है। असञ्ज्ञियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

* आगे अन्तरानुगमका अधिकार है।

§ ७१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सम्हाल करना इसका फल है।

* मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ ७२ क्योंकि जो कोई जीव भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक करके और दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति करके यदि तीसरे समयमें पुन: भुजगार और अवस्थित विभक्तियाँ करते हैं तो उनके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका केवल एक समय अन्तर पाया जाता है।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।

§ ७३ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिन्होंने तिर्यँच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भुजगार और अवस्थितस्थितिविभक्तिका प्रारम्भ किया। पुन: वहीं पर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर स्थितिविभक्तिसे उन्हें अन्तरित किया। पुन: वे तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और एकसौ त्रेसठ सागर कालतक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और वहाँ पर उन्होंने अन्तर्मुहूर्त कालके बाद सक्लेशकी पूर्ति करके भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंको किया। इस प्रकार भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है।

* अप्पदरकम्मंसियस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७४ सुगममेदं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

§ ७५ कुदो ? मिच्छत्तस्स अप्पदर करेमाणेण भुजगारमवट्ठिदं वा एगसमय काऊण पुणो तदियसमए अप्पदरे कदे एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ७६ कुदो ? अप्पदरं करेंतेण भुज०–अवट्ठिदाणि अंतोमुहुत्त काऊण अप्पदरे कदे अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

* सेसाणं पि णेदव्वं ।

§ ७७ जहा मिच्छत्तस्स णीदं तहा सेसपयडीणं पि णेदव्वं । एवं चुण्णिसुत्तपरूविदत्थस्स उच्चारणमस्सिदूण परूवणं कस्सामो ।

§ ७८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०–णवणोक० भुज०–अवट्ठि० ज० एगस० उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणंताणु०चउक्क० भुज०–अवट्ठि०

---

* मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवका अन्तरकाल कितना है ?

§ ७४ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ७५. क्योंकि मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिको करनेवाले जिस जीवने एक समयके लिए भुजगार या अवस्थित स्थितिविभक्तिको किया पुनः तीसरे समय में यदि वह अल्पतर स्थितिविभक्तिको करता है तो उसके अल्पतर स्थितिविभक्तिका एक समय अन्तर पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७६. क्योंकि अल्पतर स्थितिविभक्तिको करनेवाले जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त कालतक भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको किया । पुनः उसके अन्तर्मुहूर्त कालके बाद अल्पतर स्थितिविभक्तिके करनेपर मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ७७ जिस प्रकार मिथ्यात्वका अन्तरकाल कहा उसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी जानना चाहिए । इस प्रकार चूर्णिसूत्रके कर्ता यतिवृषभआचार्यके द्वारा सूचित हुए अर्थका उच्चारणाके आश्रयसे कथन करते हैं—

§ ७८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका अंतर मिथ्यात्वके समान है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है ।

§ ७०. सण्णि० पंचिंदियभंगो। एवमाहारीणं। णवरि सण्णि० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० भुज० उक्क० वे सत्तारस समया। असण्णि० मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० अप्पदर ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सेस० ओरालियमिस्स०भंगो।

एवं कालाणुगमो समत्तो।

* अंतरं।

§ ७१. सुगममेदं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

*** मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदकम्मंसियस्स अंतरं जहण्णेण एगसमओ।**

§ ७२. कुदो? भुजगार अवट्ठिदविहत्तीओ एगसमयं काढूण विदियसमए अप्पदरं करिय तदियसए भुजगार-अवट्ठिदेसु एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो।

*** उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।**

§ ७३. त जहा—तिरिक्खेसु मणुस्सेसु वा भुजगार-अवट्ठिदाणमादिं काढूण पुणो तत्थेव अंतोमुहुत्तकालमप्पदरेणंतरिय तिपलिदोवमिएसुप्पज्जिय तेवट्ठिसागरोवमसदं भमिय मणुस्सेसुप्पज्जिय अंतोमुहुत्ते गदे संकिलेस पूरेदूण भुज०-अवट्ठि०कदेसु लद्धमंतरं होदि।

---

§ ७० सञ्ज्ञी जीवोंके पचेन्द्रियोंके समान भग है। इसी प्रकार आहारक जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सञ्ज्ञियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिका उत्कृष्टकाल मिथ्यात्वकी अपेक्षा दो समय और शेषकी अपेक्षा सत्रह समय है। असञ्ज्ञियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। तथा शेष भग औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

*** आगे अन्तरानुगमका अधिकार है।**

§ ७१ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सम्हाल करना इसका फल है।

*** मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।**

§ ७२ क्योंकि जो कोई जीव भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक करके और दूसरे समयमें अल्पतर स्थितिविभक्ति करके यदि तीसरे समयमें पुन: भुजगार और अवस्थित विभक्तियाँ करते हैं तो उनके भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका केवल एक समय अन्तर पाया जाता है।

*** उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है।**

§ ७३ उसका खुलासा इस प्रकार है—जिन्होंने तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर भुजगार और अवस्थितस्थितिविभक्तिका प्रारम्भ किया। पुनः वहीं पर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर स्थितिविभक्तिसे उन्हें अन्तरित किया। पुन: वे तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न होकर और एकसौ त्रेसठ सागर कालतक परिभ्रमण करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और वहाँ पर उन्होंने अन्तर्मुहूर्त कालके बाद सक्लेशकी पूर्ति करके भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंको किया। इस प्रकार भुजगार और अवस्थित विभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर प्राप्त होता है।

* अप्पदरकम्मंसियस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७४ सुगममेदं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

§ ७५ कुदो ? मिच्छत्तस्स अप्पदरं करेमाणेण भुजगारमवट्ठिदं वा एगसमय कादूण पुणो तदियसमए अप्पदरे कदे एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ७६ कुदो ? अप्पदरं करेंतेण भुज०-अवट्ठिदाणि अंतोमुहुत्तं कादूण अप्पदरे कदे अंतोमुहुत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

* सेसाणं पि णेदव्वं ।

§ ७७ जहा मिच्छत्तस्स णीदं तहा सेसपयडीणं पि णेदव्वं । एवं चुण्णिसुत्तपरूविदत्थस्स उच्चारणमस्सिदूण परूवणं कस्सामो ।

§ ७८. अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस० उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं । अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि०

* मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवका अन्तरकाल कितना है ?

§ ७४ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ७५. क्योंकि मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका करनेवाले जिस जीवने एक समयके लिए भुजगार या अवस्थित स्थितिविभक्तिको किया पुनः तीसरे समय में यदि वह अल्पतर स्थितिविभक्तिको करता है तो उसके अल्पतर स्थितिविभक्तिका एक समय अन्तर पाया जाता है ।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७६. क्योंकि अल्पतर स्थितिविभक्तिको करनेवाले जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त कालतक भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंको किया । पुनः उसके अन्तर्मुहूर्त कालके बाद अल्पतर स्थितिविभक्तिके करनेपर मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ७७ जिस प्रकार मिथ्यात्वका अन्तरकाल कहा उसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी जानना चाहिए । इस प्रकार चूर्णिसूत्रके कर्ता यतिवृषभआचार्यके द्वारा सूचित हुए अर्थका उच्चारणाके आश्रयसे कथन करते हैं—

§ ७८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एकसौ त्रेसठ सागर है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है ।



मिच्छत्तभंगो। अप्प० ज० एगस०, उक्क० वे छावट्ठिसागरो० देसूणाणि। अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० ज० अंतोमुहुत्तं, अप्पदर० ज० एगस०, अव्वत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० सव्वेसिं पि अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवमचक्खु०-भवसिद्धियाणं।

अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सभी स्थितिविभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवाले और भव्य जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—एक जीवने अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना की, पश्चात् वह कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर तक विसयोजनाके साथ रहा और अन्तमें जाकर उसने अवक्तव्य स्थितिविभक्तिपूर्वक अल्पतर स्थितिको प्राप्त किया। इस प्रकार अनन्तानुबन्धीकी अल्पतर स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर प्राप्त होता है। जिसने अनन्तानुवन्धीकी विसयोजना की है ऐसा एक जीव मिथ्यात्वमें गया और वहाँ उसने अवक्तव्य स्थितिको प्राप्त किया। तदनन्तर दूसरी बार अन्तर्मुहूर्तके भीतर उसने मिथ्यात्वसे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके और अनन्तानुवन्धीकी विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त किया और इस प्रकार दूसरी बार अवक्तव्यस्थितिको प्राप्त किया। इस प्रकार अवक्तव्य स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है। तथा जिस जीवने अर्ध पुद्गलपरिवर्तन कालके आरंभमें और अन्तमें अनन्तानुबन्धीकी विसयोजना करके मिथ्यात्वको प्राप्त किया है उसके अवक्तव्य स्थितिका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थिति सम्यग्दर्शन ग्रहण करनेके पहले समयमें होती है। अतः जिसने अन्तर्मुहूर्तके अन्दर दो बार सम्यक्त्वको ग्रहण करके भुजगार या अवस्थित स्थितिको [illegible] या है उसके उक्त प्रकृतियोंकी भुजगार या अवस्थित स्थितिका जघन्य अन्तर अन्तमुंहूर्त प्राप्त होता है। जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिको कर रहा है उसने एक समय तक भुजगार या अवस्थित स्थितिको किया और पुनः अल्पतर स्थितिको करने लगा उसके उक्त प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें पल्यका असख्यातवा भागप्रमाण काल लगता है और अवक्तव्य स्थिति उद्वेलनाके विना प्राप्त नहीं होती अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्य स्थितिका जघन्य अन्तर पल्यके असख्यातवें भागप्रमाण कहा। जिसने अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके प्रारभमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करके यथासम्भव भुजगार आदि स्थितियोंको किया। अनन्तर इनकी उद्वेलना करके कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक २६ प्रकृतियोंकी सत्ताके साथ रहा। पश्चात् कुछ कालके शेष रह जानेपर पुनः इनकी सत्ताको प्राप्त करके उक्त भुजगार आदि स्थितियोंको किया। इस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार आदि स्थितियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ हमने सब प्रकृतियोंकी भुजगार आदि स्थितियोंके अन्तरका खुलासा नहीं किया है। जिनका आवश्यक था उन्हींका किया है। शेषका मूलसे होजाता है। इसी प्रकार मार्गणाओंमें भी जहाँ जिसके खुलासा करनेकी आवश्यकता होगी उसीका किया जायगा।

§ ७९ आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीससागरोवमाणि देसूणाणि। अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि अप्पदर० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि। अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीससागरो० देसूणाणि। सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० ज० अंतोमु०, अप्प० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० सव्वेसिं तेत्तीस सागरो० देसूणाणि एवं सव्वणेरइयाण वत्तव्वं। णवरि सगसगट्ठिदी देसूणा।

§ ८० तिरिक्ख० मिच्छत्त०–बारसक०–णवणोक० भुज०–अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो। अप्प० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। अवत्तव्वं ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० चदुण्हं पदाणमोघभंगो।

§ ८१ पंचिंदियतिरिक्ख–पंचि०तिरि०पज्ज०–पंचि०तिरि०जोणिणीसु मिच्छत्त–बारसक०–णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अप्प० ओघं। एवमणंताणु०चउक्काण। णवरि अप्प० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलि० देसू०

---

§ ७९ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका इसी प्रकार जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इसकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सभी स्थितिविभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारकियोंके कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम तेतीस सागरके स्थानमें कुछ कम अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

§ ८० तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका भंग मिथ्यात्वके समान है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है। तथा अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके चारों पदोंका भंग ओघके समान है।

§ ८१ पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर ओघके समान है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है

णाणि । अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । सम्मत्त-सम्मामि० भुज० ज० अंतोमुहुत्त, अप्प० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखेभागो । उक्क० सव्वेसि पि तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । एवं मणुसतिय० । णवरि मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोकसायाणं जम्हि पुव्वकोडिपुधत्तं तम्हि पुव्वकोडी देसूणा ।

§ ८२. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अप्प०-अवट्ठिदाणं जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदरस्स णत्थि अंतर । एवं मणुसअपज्ज०-एइंदिय-बादरेइंदिय-सुहुमेइंदिय-तेसिं पज्जत्तापज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-पंचकाय०-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-तसअपज्ज०-ओरालिमिस्स०-वेउव्वियमिस्स०-विभंगणाणि त्ति ।

§ ८३ देव० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज० अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । अप्पदर० ओघं[1] । अणंताणु०चउक्क० अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० अंतोमु० । उक्क० दोण्हं पि एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि ।

कि अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य है । अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा सभी स्थितिविभक्तियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक तीन पल्य है । अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटि पृथक्त्व है । इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायों की जिस स्थितिविभक्तिके रहते हुए पूर्वकोटि पृथक्त्व कहा है वहाँ कुछ कम पूर्वकोटि अन्तर कहना चाहिये ।

§ ८२ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, तथा बादर और सूक्ष्मके पर्याप्त और अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, पाँचों स्थावरकाय तथा इनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और विभंगज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए ।

§ ८३ देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर ओघके समान है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा

1 ता० प्रतौ ओघं । अवत्तव्व०अण-इति पाठ ।

सेस मिच्छत्तभंगा। सम्मत्त-सम्मामि० भुज० ज० अंतोमु०, अप्पद० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० सव्वेसिं पि एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारस सागरो० सादिरेयाणि। भवणादि जाव सहस्सार० एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

§ ८४ आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पदरस्स णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० भुज० ज० अंतोमु०, अप्प० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो०। अणंताणु०चउक्क० अप्पदर० अवत्तव्वाणं ज० अंतोमु०। उक्क० सव्वेसिं पि सगट्ठिदी देसूणा। एवं सुक्कले०।

§ ८५ अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वपयडीणमप्पदर० णत्थि अंतरं। एवमाहार० आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा० आभिणि०-सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदासंजद-ओहिदंस०-सम्मादि[1]०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति।

§ ८६ पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० ओघं। अणंताणु०चउक्क० ओघं। णवरि अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा।

दोनोंका ही उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। शेष स्थितिविभक्तियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। अवस्थित स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंके इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

§ ८४ आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यामें जानना चाहिए।

§ ८५ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारक मिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले अकषायी आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी संयत, सामायिकसंयत छेदोपस्थापना संयत परिहारविशुद्धिसंयत सूक्ष्मसांपरायिकसंयत, यथाख्यातसंयत, संयतासंयत अवधिदर्शनी सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

§ ८६ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग ओघके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग ओघके समान है। किन्तु

---

1 ता० प्रतौ सम्मामि इति पाठः।

सम्मत्त०-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो। उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। एवं पुरिस०-चक्खु० सण्णि त्ति।

§ ८७. पंचमण०-पंचवचि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क अंतोमु०। सम्म०-सम्मामि० अप्प० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। सेसाणं णत्थि अंतरं। एवमोरालिय०-वेउव्वि०-चत्तारिकसायाणं।

§ ८८. कायजोगि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असं०भागो। अप्प० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। अणंताणु०-चउक्क० अवत्तव्व० णत्थि अंतरं। सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्तव्व० णत्थि अंतरं। अप्पदर० ज० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। कम्मइय० छव्वीसं पयडीणं भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० जहण्णुक्क० एगसमओ। सेस णत्थि अंतरं। एवमणाहार०।

§ ८९. इत्थि० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० पणवण्ण पलिदो० देसूणाणि। अप्पदर० ओघं। णवरि अणंताणु०चउक्क० अप्प-

इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भाग प्रमाण है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार पुरुषवेदी, चक्षुदर्शनवाले और सज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

§ ८७. पाँचों मनोयोगी और पाँचों वचनयोगी जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा शेष स्थितिविभक्तियोंका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी, वैक्रियिककाययोगी और चार कषायवाले जीवोंके जानना चाहिए।

§ ८८. काययोगियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भाग-प्रमाण है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। कार्मणकाययोगियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। शेषका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार अनाहारकोंके जानना चाहिए।

§ ८९ स्त्रीवेदियोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचवन पल्य है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी

1, ता प्रतौ एगस०। अठ-इति पाठ.।

दर० ज० एगस०, उक्क० पणवण्ण पलिदो० देसूणाणि। अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० ज० अंतोमुहुत्तं, अप्पदर० ज० एगसमओ, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० सव्वेसिं पि सगट्ठिदी देसूणा। णवुंस० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीस सागरो० देसूणाणि। अप्पदर० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु०। णवरि अणंताणु०चउक्क० अप्पदर० ज० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। सम्मत्त-सम्मामि० ओघं। एवमसंजद०।

§ ९०. मदि०-सुद० मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि। अप्पदर० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० णत्थि अंतरं। एवं मिच्छादिट्ठीणं। अभव० छव्वीसं पयडीणमेवं चेव।

§ ९१ किण्ह०-णील०-काउ० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। अप्पदर० ओघं। अणंताणु०चउक्क० भुज०-अवट्ठि० ज० एगस०, अप्पदर ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० अंतोमु०, उक्क० सव्वेसिं सगट्ठिदी

चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पचपन पल्य है। अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार असंयत जीवोंके जानना चाहिए।

§ ९०. मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक इकतीस सागर है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिका अन्तर नहीं है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टियोंके जानना चाहिए। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका इसी प्रकार जानना चाहिए।

§ ९१ कृष्ण नील और कापोत लेश्यामें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। अल्पतर स्थितिविभक्तिका ओघके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

देसूणा। सम्मत्त सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० ज० अंतोमु०, अप्पदर० ज० एगस०, अवत्तव्व० ज० पलिदो० असंखे०भागो, उक्क० सव्वेसिं सगट्ठिदी देसूणा। तेउ० सोहम्मभंगो। पम्म० सहस्सारभंगो। असण्णि० एइंदियभंगो। णवरि छव्वीसपयडी० भुज० अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। आहारि० ओघं। णवरि जम्हि उवड्ढपोग्गलपरियट्टं तम्हि अंगुलस्स असंखे०भागो।

एवमंतराणुगमो समत्तो।

*** णाणाजीवेहि भंगविचओ**

§ ९२. सुगममेदं; अहियारसंभालणफलत्तादो।

*** संतकम्मिएसु पयदं।**

§ ९३. कुदो? असंतकम्मिएसु भुजगारादिपदाणमसंभवादो।

*** सव्वे जीवा मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणं भुजगारट्ठिदिविहत्तिया च अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया च अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया च।**

§ ९४. एदेसिं कम्माणं भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तिया सव्वे जीवा ते णियमा अत्थि त्ति संबंधो कायव्वो।

*** अणंताणुबंधीणमवत्तव्वं भजिदव्वं।**

भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त, अल्पतर स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर एक समय और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका जघन्य अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। तथा सभीका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। पीतलेश्यामें सौधर्मके समान भंग है। पद्मलेश्यामें सहस्रारके समान भंग है। असज्ञियोंमे एकेन्द्रियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि छब्बीस प्रकृतियोंकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असख्यातवें भागप्रमाण है। आहारकोंके ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि जहाँ उपार्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण अन्तर कहा है वहाँ इनके अंगुलके असख्यातवें भागप्रमाण अन्तर कहना चाहिये।

इस प्रकार अन्तरानुगम समाप्त हुआ।

*** अब नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमका अधिकार है।**

§ ९२ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका फल अधिकारकी सम्हाल करना है।

*** सत्कर्मवाले जीवोंका प्रकरण है।**

§ ९३. शंका—सत्कर्मवाले जीवोंमें ही इस अधिकारकी प्रवृत्ति क्यों होती है?

समाधान—क्योंकि जिन जीवोंके मोहनीयकर्मकी सत्ता नहीं है उनमें भुजगारादि पदोंका पाया जाना सम्भव नहीं है।

*** मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगारस्थितिविभक्तिवाले, अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले सब जीव नियमसे हैं।**

§ ९४ इन पूर्वोक्त कर्मोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जो सब जीव हैं वे नियमसे हैं ऐसा यहाँ सबन्ध करना चाहिये।

*** अनन्तानुबन्धीचतुष्कका अवक्तव्य पद भजनीय है।**

§ ९५. कुदो ? विसंजोइदअणंताणु०चउक्क० सम्माइट्ठीणं णिरंतरं मिच्छत्तगुणेण परिणममाणाभावादो ।

* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तिया भजियव्वा ।

§ ९६ कुदो ? णिरंतरं सम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवाणमभावादो ।

* अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया णियमा अत्थि ।

§ ९७ कुदो ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसंतकम्मियजीवाणं तीदाणागदवट्टमाणकालेसु विरहाभावादो ।

§ ९८. एवं जइवसहाइरियदेसामासियसुत्तस्सपरूवणं काऊण संपहि जइवसहाइरियसूचिदत्थमुच्चारणाए भणिस्सामो । णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो- ओघे० आदेसे० । ओघेण० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज०-अप्पदर० अवट्ठि०

---

§ ९५. क्योंकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंका मिथ्यात्व गुणके साथ निरन्तर परिणमन नहीं पाया जाता ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं ।

§ ९६ क्योंकि, निरन्तर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव नहीं पाये जाते हैं ।

* अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं ।

§ ९७ क्योंकि, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसत्कर्मवाले जीवोंका अतीत अनागत और वर्तमान इन तीनों कालोंमें अभाव नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँपर भुजगार आदि पदोंका आलम्बन लेकर नाना जीवोंकी अपेक्षा भंग विचयका विचार किया जा रहा है । मोहनीयके कुल भेद २८ हैं । उनमेंसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदवाले नाना जीव निरन्तर पाये जाते हैं यह स्पष्ट ही है, क्यों कि यथासम्भव मिथ्यात्व आदि गुणस्थानोंमें इनका निरन्तर बन्ध सम्भव होनेसे ये बन जाते हैं । किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अवक्तव्य पदकी यह स्थिति नहीं है । कारण कि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानमें आता है उसीके यह पद सम्भव है पर ऐसे जीवोंका निरन्तर उक्त गुणस्थानोंको प्राप्त होना सम्भव नहीं है । कदाचित् एक भी जीव उक्त गुणस्थानोंको नहीं प्राप्त होता और कदाचित् एक जीव तथा कदाचित् नाना जीव उक्त गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं इसलिए अनन्तानुबन्धीके अवक्तव्य पदवाले भजनीय कहे हैं । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर पदवाले जीव तो सदा पाये जाते हैं, क्यों कि इन प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका निरन्तर सद्भाव पाया जाता है और उनके एक मात्र अल्पतर पद ही होता है पर इन प्रकृतियोंके शेष पद भजनीय हैं क्योंकि शेष पद, जो मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वको प्राप्त करते हैं, उनके ही प्रथम समयमें सम्भव हैं और ऐसे जीव निरन्तर नहीं पाये जाते, अतः इन प्रकृतियोंके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य पदवाले जीव भजनीय कहे हैं ।

§ ९८. इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके देशामर्षकसूत्रके अर्थका कथन करके अब यतिवृषभ आचार्यके द्वारा सूचित किये गये अर्थकी उच्चारणाका कथन करते हैं—नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा

णियमा अत्थि । अणंताणु०चउक्क० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । अवत्तव्वं भयणिज्जा । सिया एदे च अवत्तव्वविहत्तिओ च, सिया एदे च अवत्तव्वविहत्तिया च । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० णियमा अत्थि । सेसपदा भयणिज्जा । एवं तिरिक्ख०-कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु०-किण्ह-णील-काउ०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ९९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पदर०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । [भुज० भयणिज्जा० ।] सिया एदे च भुजगारविहत्तिओ च, सिया एदे च भुजगारविहत्तिया च । अणंताणु०चउक्क० अप्पद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । सेस-पदा भयणिज्जा । सम्मत्त-सम्मामि० ओघभंगो । एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्ख-तिय०-मणुसतिय०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज-तस-तसपज्ज०-

---

मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं । कदाचित् ये भुजगारादि विभक्तिवाले बहुत जीव होते हैं और अवक्तव्यविभक्तिवाला एक जीव होता है । कदाचित् ये भुजगारादिविभक्तिवाले नाना जीव होते हैं और अवक्तव्य विभक्तिवाले नाना जीव होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं । तथा शेष पदवाले जीव भजनीय हैं । इसी प्रकार तिर्यंच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चार कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णलेश्यावाले, नीललेश्यावाले कपोतलेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषाय इन २२ प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन पद होते हैं जो सर्वदा पाये जाते हैं इसलिये इनकी अपेक्षा एक ध्रुवभंग ही होता है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कके चार पद हैं जिनमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन पद ध्रुव हैं और अवक्तव्यपद अध्रुव है । अवक्तव्यपदवाला कदाचित् एक जीव होता है और कदाचित् नाना । अब इन दो भंगोंमें ध्रुवभंग और मिला दिया जाता है तो अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा कुल तीन भंग प्राप्त होते हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके चार पद हैं । जिनमें भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य ये तीन भजनीय और एक अल्पतर ध्रुव है, अतः यहाँ कुल २७ भंग होते हैं, क्योंकि एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा तीन भजनीय पदोंके २६ भंग और उनमें एक ध्रुव भंगके मिलानेपर कुल २७ भंग होते हैं । तिर्यंच आदि मूलमें गिनाई गईं कुछ ऐसी मार्गणाएं हैं जिनमें यह ओघ प्ररूपणा घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है ।

§ ९९ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इनके भुजगार पदवाले जीव भजनीय हैं। कदाचित् ये नाना जीव हैं और एक भुजगार स्थितिविभक्तिवाला जीव है। कदाचित् ये नाना जीव हैं और नाना भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं तथा शेष पद भजनीय हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, पचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेद-

पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति।

§ १०० पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त सोलसक० णवणोक० णारयभंगो। णवरि अणंताणु० अवत्त० णत्थि। सम्म०-सम्मामि० अप्प० णियमा अत्थि। एवं सव्व विगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-बादरपुढविपज्ज०-बादरआउ०पज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउ पज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय०पज्ज०-तसअपज्ज०-विहंगणाणि त्ति।

§ १०१ मणुसअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं सव्वपदा भयणिज्जा। भंगा छव्वीस; धुवपदाभावादो। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पदरं भयणिज्जं। भंगा दोण्णि, धुवाभावादो। एवं वेउव्वियमिस्स०।

वाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नरकमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंके दो पद ध्रुव और एक पद भजनीय बतलाया है, अतः इनके ध्रुव भंगके साथ तीन भंग प्राप्त होते हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्कके चार पदोंमेंसे अल्पतर और अवस्थित ये दो पद ध्रुव तथा भुजगार और अवक्तव्य ये दो पद भजनीय बतलाये हैं इसलिये इनके नौ भंग प्राप्त होते हैं। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जिसप्रकार ओघसे २७ भंग बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये। मूलमें सब नारकी आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें उक्त व्यवस्था बन जाती है।

§ १०० पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा नारकियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्यस्थितिविभक्ति नहीं है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, बादरपृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पति कायिक प्रत्येक शरीर पर्याप्त त्रस अपर्याप्त और विभंगज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि ही होते हैं, उनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्य भंग नहीं बनता। अतः इनके मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषाय इन सबके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन पद ही होते हैं। इनमेंसे दो पद ध्रुव और एक भुजगार पद भजनीय है, अतः कुल तीन भंग प्राप्त होते हैं। यहाँ नारकियोंके समान कहनेका मत लब यह है कि जिसप्रकार नारकियोंके एक भुजगार पद भजनीय बतलाया उसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके भी जानना चाहिये। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा इनके एक अल्पतर पद ही पाया जाता है जो ध्रुव है अतः इनकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग ही प्राप्त होता है। सब विकलेन्द्रिय आदि और जितनी मार्गणाएं मूलमें गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान कहा।

§ १०१ मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके सब पद भजनीय हैं। भंग छब्बीस ही होते हैं, क्योंकि यहाँ ध्रुवपदका अभाव है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पतर पद भजनीय है। भंग दो होते हैं, क्योंकि ध्रुवपदका अभाव है। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है। अतः इसमें २६ प्रकृतियोंके तीनों पद भजनीय हैं जिनके कुल भंग २६ होते हैं। यहाँ ध्रुव पदका अभाव होनेसे ध्रुव भंगका निषेध किया है। यद्यपि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका यहाँ एक अल्पतर पद ही है फिर भी सान्तर मार्गणाके कारण वह भी भजनीय है अतः उसके एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग कहे।

§ १०२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पदर० णियमा अत्थि । अणंताणु०चउक्क० अप्पदर० णियमा अत्थि । अवत्तव्वविहत्तिया भयणिज्जा । भंगा तिण्णि । सम्मत्त-सम्मामि० ओघं । एवं सुक्कले० । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० सव्वपयडीणमप्पदर० णियमा अत्थि । एवमाभिणि० सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद—ओहिदंस०—सम्मादि०—खइय०—वेदय०दिट्ठि त्ति ।

§ १०३. एइंदिय० सव्वपयडि० सव्वपदा णियमा अत्थि । एवं बादरसुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त [पुढवि०-बादरपुढवि०-] बादरपुढवि०अपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त-[आउ०-बादरआउ०]बादरआउअपज्ज० सुहुमआउ०पज्जत्तापज्जत्त [तेउ०-बादरतेउ०]बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त [वाउ०-बादरवाउ०] बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउपज्जत्ता

यहां भी ध्रुव पदका अभाव होनसे ध्रुव भंगका निषेध किया। वैक्रियिकमिश्रकाययोग यह भी सान्तर मार्गणा है और इसमें लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके समान सब प्रकृतियोंके पद तथा भंग बन जाते हैं, अतः इनके कथनको लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके समान कहा।

§ १०२ आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। भंग तीन होते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कथन ओघके समान है। इसी प्रकार शुक्ल लेश्यावाले जीवोंमें है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनवाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आनतसे लेकर उपरिमग्रैवेयकतकके देवोंके मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंका एक अल्पतर पद ही बतलाया है, अतः इनका एक ध्रुव भंग ही होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अल्पतर और अवक्तव्य ये दो पद बतलाये हैं। इनमें से अल्पतर पद ध्रुव है और अवक्तव्य पद अध्रुव है। अतः एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा इन अवक्तव्य सम्बन्धी दो अध्रुव भंगोंमें एक ध्रुवभंगके मिला देनेपर तीन भंग प्राप्त होते हैं। आनतादिकमें मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति और सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वकी प्राप्ति सम्भव है, अतः यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके ओघके समान चारों पद और उनके २७ भंग बन जाते हैं। यही कारण है कि यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भंगोंको ओघके समान कहा है। अनुदिश आदिकमें तो सम्यग्दृष्टि जीव ही होते हैं और सम्यग्दृष्टियोंके सब प्रकृतियोंका एक अल्पतर पद ही होता है। इसीलिये अनुदिशादिकमें सब प्रकृतियोंका एक अल्पतर पद कहा है। मूलमें आभिनिबोधकज्ञानी आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें भी एक अल्पतर पद ही सम्भव है, अतः उनके कथनको अनुदिश आदिके समान कहा।

§ १०३. एकेन्द्रियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक तथा उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक तथा

पज्जत्त—[वणप्फदि०–बादरवणप्फदि०–] बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०–[सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्त०–]बादरणिगोद०-सुहुमणिगोदपज्जत्तापज्जत्त ओरालियमि० कम्मइय० मदि०सुद०-असंजद० मिच्छादि० असण्णि-अणाहारि त्ति । णवरि कम्मइय-अणाहारि० सम्म०-सम्मामि०अप्पद० भयणिज्ज० । आहार० आहारमि० सव्वपयडीणमप्पदरं भयणिज्जं । एवमवगद०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खाद० उवसम०-सासण० सम्मामि०दिट्ठि त्ति ।

एवं णाणाजीवेहि भंगविचओ समत्तो ।

§ १०४ भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघे० आदेसे० । ओघेण मिच्छत्त बारसक०-णवणोक० भुज० सव्वजी० केवडिओ भागो ? असंखे०भागो । अप्पद० केवडिओ भागो ? असंखेज्जा भागा । अवट्ठि० सव्वजी० केव० ? संखे०भागो । एवमणंताणु०चउक्क० । णवरि अवत्तव्व० अणंतिमभागो । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदर० सव्वजी०

उनके पर्याप्त और अपर्याप्त वनस्पतिकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, सूक्ष्मवनस्पति व उनके पर्याप्त और अपर्याप्त बादर निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म निगोद और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी असंयत मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि कार्मणकाययोगी और अनाहारक जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव भजनीय हैं। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंका अल्पतर पद भजनीय है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत यथाख्यातसंयत, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंके २८ प्रकृतियोंमेंसे जिसके जितने पद सम्भव हैं उन पदवाले जीव सर्वदा रहते हैं अतः वहाँ एक ध्रुव भंग ही होता है। इसी बातके घोतन करनेके लिये 'सब प्रकृतियोंके सब पद नियमसे हैं' यह कहा है। इसी प्रकार मूलमें गिनाई गई बादर एकेन्द्रिय आदि मार्गणाओंमें एक ध्रुव पद ही प्राप्त होता है अतः उनके कथनको एकेन्द्रियोंके समान कहा। किन्तु कार्मणकाययोग और अनाहारक मार्गणामें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव कदाचित् पाये जाते हैं और कदाचित् नहीं पाये जाते हैं इसलिये इनमें उक्त प्रकृतियोंका अल्पतर पद भजनीय है जिससे एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग प्राप्त होते हैं। आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोगमें सब प्रकृतियोंका एक अल्पतर पद ही होता है फिर भी यह सान्तर मार्गणा है इसलिये इसमें अल्पतर पदको भजनीय कहा। यहाँ भी दो भंग होते हैं। मूलमें अपगतवेद आदि और जितनी मार्गणाएं गिनाई हैं उनमें सब प्रकृतियोंके अल्पतर पदवाला कदाचित् एक जीव और कदाचित् नाना जीव होते हैं अतः उनके कथनको आहारक काययोगियोंके समान कहा।

इस प्रकार नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय समाप्त हुआ।

§ १०४ भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? असंख्यातवें भाग हैं। अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने भाग हैं? असंख्यात बहुभाग हैं। अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं? संख्यातवें भाग हैं। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीव अनन्तवें भाग हैं। सम्यक्त्व और

केव० ? असंखेज्जा भागा । सेस० असंखे०भागो । एवं तिरिक्ख कायजोगि-ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०-आहारि त्ति ।

§ १०५. आदेसेण णेरइएसु एवं चेव । णवरि अणंताणु० चउक्क० अवत्तव्वमसंखे०-भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु पंचिंदियतिरिक्खतिय०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्वि०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति ।

§ १०६. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० छव्वीसं पयडीणमेवं चेव । णवरि अणंताणु०-चउक्क० अवत्तव्व० णत्थि । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं णत्थि भागाभागं; एगप्पदर-पदत्तादो । एवं मणुसअपज्ज०-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय०-सव्वपंचकाय-तसअपज्ज०-ओरालियमिस्स०-वेउव्वि०मिस्स-कम्मइय-मदि-सुद०-विहंग०-मिच्छादिट्ठि-असण्णि०-अणाहारि त्ति ।

§ १०७. मणुस० णिरओघं । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० एवं चेव । णवरि जम्हि असंखे०भागो तम्हि संखे०भागो कायव्वो ।

§ १०८. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति अणंताणु०चउक्क० अप्प० सव्वजी० के० ? असंखेज्जा भागा । अवत्तव्व० असंखे०भागो । सम्मत्त-सम्मामि० ओघं ।

सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । तथा शेष पदवाले असंख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार तिर्यंच, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १०५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले असख्यातवें भाग हैं । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदवाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, और सज्ञी जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १०६ पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अनन्तानुबन्धी चतुष्कका अवक्तव्यपद नहीं है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भागाभाग नहीं है, क्योंकि यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंका एक अल्पतरपद है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पचेन्द्रिय अपर्याप्त, सब पाँचों स्थावर काय त्रस अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १०७ सामान्य मनुष्योंमें सामान्य नारकियोंके समान जानना चाहिए । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ असख्यातवाँ भाग कहा है वहाँ सख्यातवाँ भाग कर लेना चाहिये ।

§ १०८ आनत कल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव सब जीवोंके कितने भाग हैं ? असख्यात बहुभाग हैं । तथा अवक्तव्य

सेसपयडि० णत्थि भागाभागं। एवं सुक्के०। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठ० सव्व-
पयडी० णत्थि भागाभागं। एवमाहार० आहारमिस्स०-अवगद० अकसा०-आभिणि०-
सुद०-ओहि०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय० छेदो०-परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-संजदा-
संजद० ओहिदंस०-सम्मादिट्ठि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि
त्ति। अभव० छव्वीसपयडि० मदिभंगो।

एवं भागाभागाणुगमो समत्तो।

§ १०९ परिमाणाणुगमेण दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण। ओघेण मिच्छत्त
बारसक०-णवणोक० तिण्णि पदा० केत्तिया? अणंता। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव।
णवरि अवत्तव्व० असंखेज्जा। सम्मत्त-सम्मामि० सव्वपदा केत्तिया? असंखेज्जा। एवं
तिरिक्ख-कायजोगि-ओरालि०-णवुंस०-चत्तारिक० असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि०
आहारि त्ति।

§ ११० आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणं सव्वपदा केत्तिया? असंखेज्जा। एवं
सव्वणेरइय०-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देव०-भवणादि जाव सहस्सार०-पंचिं-
दिय-पंचिं०पज्ज-तस-तसपज्ज०—पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०—चक्खु०-
तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति। मणुस० अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० केत्ति०? संखेज्जा।

स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यातवें भाग हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कथन ओघके समान है। यहाँ शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अपेक्षा भागाभाग नहीं है। इसी प्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी अपगतवेदी, अकषायी, आभिनि-बोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत परिहारविशुद्धिसंयत सूक्ष्मसांपरायिकसंयत यथाख्यातसंयत, संयतासंयत अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग मत्यज्ञानियोंके समान है।

इस प्रकार भागाभागानुगम समाप्त हुआ।

§ १०९ ओघ और आदेशकी अपेक्षा परिमाणानुगम दो प्रकारका है। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा तीन पदवाले जीव कितने हैं? अनन्त हैं। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार तिर्यंच काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले क्रोधादि चारों कषायवाले असंयत अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

§ ११० आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवन-वासियोंसे लेकर सहस्रारस्वर्गतकके देव, पंचेन्द्रिय पंचेन्द्रियपर्याप्त त्रस, त्रसपर्याप्त पाँचों मनो-योगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेदवाले पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनवाले, पीतलेश्या-वाले पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। मनुष्योंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अवक्तव्य

सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि० अवत्तव्व० केत्ति० ? संखेज्जा। सेसपयडीणं सव्व-पदा० अणंताणु० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० अप्प० के० ? असंखेज्जा।

§ १११. मणुसपज्ज० मणुसिणी० सव्वपयडी० सव्वपदा० के० ? संखेज्जा। एवं सव्वट्ठ०-आहार०-आहारमिस्स०-अवगद०-अकसा०-मणपज्ज० संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार० सुहुम० जहाक्खादसंजदे त्ति।

§ ११२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति सव्वपयडीण सव्वपदा० के० ? असंखेज्जा। एवं सुक्के०। अणुद्दिसादि जाव अवराइद त्ति सव्वपयडि० अप्पदर० के० ? असंखेज्जा। एवमाभिणि० सुद०-ओहि०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति।

§ ११३. एइंदिएसु मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० सव्वपदा० के० ? अणंता। सम्मत्त सम्मामि० अप्पदर० के० ? असंखेज्जा। एवं सव्वएइंदिय-वणप्फदि०-बादर-सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-णिगोद०-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्त-ओरालियमिस्स-कम्मइय-मदि०-सुद० मिच्छादि०-असण्णि०-अणाहारि त्ति। विगलिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो। एव पंचि०अपज्ज०-चत्तारिकाय तस अपज्ज०-वेउव्वियमिस्स-विहग-

---

स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। तथा शेष प्रकृतियोंके सब पदवाले अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी भुजगार, अल्पतर और अवस्थितविभक्तिवाले तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।

§ १११ मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमे सब प्रकृतियोके सब पदवाले जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। इसीप्रकार सर्वार्थसिद्धिके देव, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदवाले, अकषायवाले, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए।

§ ११२ आनतकल्पसे लेकर उपरिमग्रैवेयकतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंमे जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर अपराजिततकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसीप्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

§ ११३ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके सब पदवाले जीव कितने हैं ? अनन्त हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, निगोद, उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना। विकलेन्द्रियोंके पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान भंग है। इसीप्रकार पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पृथिवी आदि चार स्थावरकाय, त्रस अपर्याप्त, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी और विभंगज्ञानी जीवोंके

णाणि त्ति । अभव० छब्बीसपयडि० मदि०भंगो ।

एवं परिमाणाणुगमो समत्तो ।

§ ११४ खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० तिण्णिपदा केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । अणंताणु०चउक्क० एवं चेव । णवरि अवट्ठ० लोगस्स असंखे०भागे । सम्मत्त०-सम्मामि० सव्वपदा० लोग० असंखे०भागे । एवं तिरिक्ख०-कायजोगि० ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु० तिण्णिले० भवसि०-आहारि त्ति ।

§ ११५ आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडी०सव्वपदा के० ? लोग० असंखे० भागे । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-सव्वमणुस०-सव्वदेव०-विगलिंदिय-सव्वपंचिंदिय-बादरपुढविपज्ज० बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०—बादरवाउपज्ज०-बादरवणप्फदिपत्तेय-पज्ज०-सव्वतस०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-वेउ मिस्स० आहार०-आहारमिस्स०-इत्थि०-पुरिस०-विहंग०-आभिणि०-सुद० ओहि०-मणपज्ज० -संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-सुहुम० जहाक्खाद०-संजदासंजद०-चक्खु०-ओहिदंस० तिण्णिले०-सम्मादिट्ठि० खइय०-वेदय०-उवसम०-सासण० सम्मामि०-सण्णि त्ति । णवरि बादरवाउपज्जत्त० सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदरवज्जा लोग० संखे०भागे ।

जानना चाहिए। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा मत्यज्ञानियोंके समान भंग है।

इस प्रकार परिमाणानुगम समाप्त हुआ।

§ ११४ क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सब लोकमें रहते हैं। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा इसीप्रकार जानना। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यंच, काययोगी औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत अचक्षुदर्शनवाले कृष्णादि तीन लेश्यावाले भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए।

§ ११५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदवाले जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रियतिर्यंच, सब मनुष्य सब देव सब विकलेन्द्रिय, सब पंचेन्द्रिय, बादर पृथिवीकायिकपर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिकपर्याप्त बादर वायुकायिकपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त सब त्रस, पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी स्त्रीवेदवाले पुरुषवेदवाले विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी, संयत सामायिकसंयत छेदोपस्थापनासंयत परिहारविशुद्धिसंयत सूक्ष्मसांपरायिकसंयत यथाख्यातसंयत संयतासंयत, चक्षुदर्शनवाले, अवधिदर्शनवाले, पीत आदि तीन लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादरवायुकायिकपर्याप्तक जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंको छोड़कर शेष पदवाले जीव लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं।

§ ११६. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक० भुज०-अवट्ठि-अप्पदर० ओघं। सम्मत्त सम्मामि०अप्पदर०ओघं। एवं बादर-सुहुमेइंदिय-पज्जत्तापज्जत्त पुढवि०-बादरपुढवि अपज्ज०-सुहुमपुढवि-पज्जत्तापज्जत्त-आउ०-बादरआउअपज्ज० सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त०-तेउ० -बादरतेउ०अपज्ज०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-वाउ०-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउ-पज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-वणप्फदि०-णिगोद० बादरसुहुमपज्जत्ता पज्जत्त ओरालियमिस्स०-कम्मइय०-मदि०-सुद० मिच्छादि०-असण्णि०-आहारि त्ति।

§ ११८. अवगद० सव्वपयडि० अप्प० लोग० असंखे०भागे। एवमकसा०। अभवसि० छव्वीसपयडीणं मदि०भगो।

एवं खेत्ताणुगमो समत्तो।

§ ११८. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो–ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण

§ ११६ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका क्षेत्र ओघके समान है। इसी प्रकार बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय और उनके पर्याप्त तथा अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, जलकायिक, बादर जलकायिक, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक तथा उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, निगोद, तथा उनके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ ११७ अपगतवेदियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीव लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अकषायी जीवोंके जानना चाहिए। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा मत्यज्ञानियोंके समान भग है।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिवाले जीव अनन्त हैं और ये सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः इनका क्षेत्र सब लोक कहा। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदवाले जीव असख्यात होते हुए भी स्वल्प हैं, अतः इनका क्षेत्र लोकके असख्यातवें भागप्रमाण कहा। यह व्यवस्था तिर्यंचगति आदि मूलमें गिनाई हुई मार्गणाओंमें बन जाती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा। आदेशसे जिस मार्गणावाले और उसके अवान्तर भेदोंका जितना क्षेत्र है उसमें २६ प्रकृतियोंके सम्भव पदवालोंका उतना क्षेत्र कहा। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा सर्वत्र सम्भव पदवालोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीवोंका क्षेत्र सर्वत्र लोकके असख्यातवें भाग प्रमाण है।

इस प्रकार क्षेत्रानुगम समाप्त हुआ।

§ ११८ स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।

मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० तिण्हं पदाणं विहत्तिएहि केवडियं खेत्तं पोसिदं ? सव्वलोगो। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० के० खे० पो० ? लोग असंखे० भागो पोसिदो अट्ठ चोद्दस० देसूणा सव्वलोगो वा। सेसविहत्तिएहि केव० ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा। एवं कायजोगि०-चत्तारिकसा० असंजद०-अचक्खु०-भवसि०-आहारि त्ति।

§ ११९. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त०-बारसक०-णवणोक० तिण्हं पदाणं विहत्ति० लोग० असंखे०भागो छ चोद्दस देसूणा। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि

इनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी तीन पदविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? सब लोकका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा शेष विभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार काययोगी, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनी, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिवाले जीव अनन्त हैं और वे सब लोकमें पाये जाते हैं अतः इनका स्पर्श सब लोक कहा। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीवोंका वर्तमान स्पर्श लोकके असंख्यातवें भाग है क्योंकि वर्तमान कालमें जिन्होंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसे जीव सम्यक्त्वसे च्युत होकर मिथ्यात्वमें जानेवाले बहुत ही थोड़े हैं। तथा अतीत कालीन स्पर्श त्रस नालीके कुछ कम आठ बटे चौदह भाग है क्योंकि यद्यपि ऊपर नौवें ग्रैवेयक तकके और नीचे सातवें नरक तकके जीव अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थितिको करते हुए पाये जाते हैं। परन्तु उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग ही है। किन्तु इस पद युक्त देवोंका विहारवत् स्वस्थान त्रस नालीके आठबटे चौदह भाग है अतः इनका अतीत कालीन स्पर्श त्रस नालीके कुछ कम आठबटे चौदह भाग प्रमाण कहा। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका स्पर्श तीन प्रकारसे बतलाया है। इनमेंसे लोकका असंख्यातवाँ भागप्रमाण स्पर्श वर्तमान कालकी अपेक्षा बतलाया है। कुछ कम आठबटा चौदह भाग प्रमाण स्पर्श विहार आदि पदोंकी अपेक्षासे बतलाया है। और सब लोक स्पर्श मारणान्तिक तथा उपपाद पदकी अपेक्षा बतलाया है। तथा शेष पदोंकी अपेक्षा जो लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श बतलाया है वह वर्तमान कालकी प्रधानतासे बतलाया है और कुछ कम आठबटा चौदह राजु प्रमाण स्पर्श अतीत कालकी अपेक्षा बतलाया है। यहाँ कुछ और मार्गणाएं गिनाई हैं जिनका स्पर्श ओघके समान प्राप्त होता है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा। जैसे काययोगी आदि।

§ ११९ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग





अवत्तव्व० खेत्तभंगो। सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो छ चोद्दस० देसूणा। सेस० लोग० असंखे०भागो। पढमाए खेत्तभंगो। विदियादि जाव सत्तमि त्ति णिरयोघो। णवरि सगपोसणं कायव्वं। तिरिक्ख० ओघं। णवरि अट्ठ चोद्दस भागा त्ति णत्थि। एवमोरालिय०-णवुंस०-तिण्णिलेस्सा त्ति।

§ १२०. पंचिंदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज-पंचिं०तिरि०जोणिणी० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० सव्वपदाणं वि० के० खे० पो० ? लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० इत्थि०-पुरिस० भुज०-अवट्ठि० खेत्तभंगो। सम्म०-सम्मामि० अप्पदर० मिच्छत्तभंगो। सेस० खेत्तभंगो। एवं मणुस-तिय०। पंचिंदियतिरिक्ख०अपज्ज० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० तिण्णिपदा०

प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यका भंग क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छहभाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा शेष स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्शका भंग क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं तक सामान्य नारकियोंके समान स्पर्श है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्श कहना चाहिये। तिर्यंचोंमें ओघके समान स्पर्श है। किन्तु इतनी विशेषता है कि आठबटे चौदह भाग यह विकल्प नहीं है। इसी प्रकार औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदी और कृष्णादि तीन लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और कुछ कम छहबटे चौदह राजु प्रमाण बतलाया है। वह यहाँ सब प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा बन जाता है। किन्तु इसके दो अपवाद हैं। एक तो अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अवक्तव्य पदकी अपेक्षा यह स्पर्श नहीं प्राप्त होता, क्योंकि ऐसे जीव मारणान्तिक समुद्घात या उपपाद पदसे रहित होते हैं। इसलिये उनके लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही स्पर्श पाया जाता है। दूसरे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर पदको छोड़कर शेष पदोंकी अपेक्षा भी लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श प्राप्त होता है। कारण वही है जो अनन्तानुबन्धीके अवक्तव्य भंगके सम्बन्धमें बतलाया है। प्रथमादि नरकोंमें भी इसीप्रकार अपने अपने स्पर्शको जानकर कथनकर लेना चाहिये। यद्यपि तिर्यंचोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंकी अपेक्षा ओघके समान स्पर्श बन जाता है किन्तु यहाँ कुछ कम आठबटे चौदह राजु स्पर्श नहीं प्राप्त होता, क्योंकि यह स्पर्श देवोंकी प्रधानतासे बतलाया है परन्तु तिर्यञ्चोंमें देव सम्मिलित नहीं हैं। औदारिककाययोग आदि मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये।

§ १२०. पचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याप्त और पचेन्द्रियतिर्यंच योनिमती जीवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवालोंका तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका भंग मिथ्यात्वके समान है और शेषका भंग क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यिनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंके जानना चाहिये। पचेन्द्रिय

सम्म०-सम्मामि० अप्पदर० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। एवं मणुसअपज्ज०-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्ज०-बादरपुढविपज्जत्त-बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज०-बादरवाउपज्ज [बादरव०-] तसअपज्जत्ता त्ति। णवरि बादरवाउपज्ज० छव्वीसपयडि० तिण्णिपदा० लो० संखे०भागो। इत्थि० पुरिस० भुज० अवट्ठि० णत्थि सव्वलोगो वा।

§ १२१ देव० मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक० सव्वपदाणं वि० लोग० असंखे० भागो अट्ठ णव चोद्द० देसूणा। णवरि अणंताणु०चउक्क० अवत्तव्व० इत्थि०-पुरिस० भुज० अवट्ठि० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। सम्म०-सम्मामि० भुज०

तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पदवाले जीवोंका और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त बादर पृथिवी कायिकपर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और त्रस अपर्याप्त जीवोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंके तीन पदवाले जीवोंने लोकके संख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिके बिना शेष स्थिति विभक्तिवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—सामान्य नारकियोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदोंके स्पर्शके लिए जो युक्ति दे आये हैं वही तिर्यंचत्रिकमें भी लागू होती है। किन्तु यहाँ भी कुछ अपवाद हैं। दो अपवाद तो वही हैं जो नरकगतिमें बतला आये हैं। तथा एक तीसरा अपवाद स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिके स्पर्शका है। बात यह है कि यद्यपि उक्त तीन प्रकारके तिर्यंचोंका सब लोक स्पर्श बतलाया है पर वह जीवोंके प्राप्त होता है जो एकेन्द्रियोंमेंसे आकर इनमें उत्पन्न होते हैं या जो एकेन्द्रियोंमें मारणान्तिक समुद्घात करते हैं। परन्तु ऐसे जीवोंके स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थिति नहीं पाई जाती, अतः यहाँ इनका स्पर्श क्षत्रके समान बतलाया है। मनुष्यत्रिकमें भी इसीप्रकार विशेषताओंको जानकर स्पर्शका कथन करना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर पदकी अपेक्षा स्पर्श पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान प्राप्त होता है अतः इनके कथनको पंचेन्द्रियतिर्यंचोंके समान बतलाया। मनुष्यअपर्याप्त आदि कुछ और मार्गणाएं हैं जिनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः इनके कथनको पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान बतलाया है। किन्तु बादर वायुकायिकपर्याप्त जीव इसके अपवाद हैं। बात यह है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंका स्पर्श लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, अतः इनमें छब्बीस प्रकृतियोंके तीन पदवालोंका स्पर्श लोकके संख्यातवें भागप्रमाण बन जाता है। यहाँ जो स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवालोंके सब लोक स्पर्शका निषेध किया है सो इसका कारण प्रायः वही है जो पहले बतला आये हैं।

§ १२१ देवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने तथा स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्ति वाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य-

अवट्ठि०-अवत्तव्व० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा। अप्पदर० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णव चोद्दस० देसूणा। एव सोहम्म०। भवण०-वाण०-जोदिसि० एवं चेव। णवरि अद्धुट्ठ-अट्ठ-णव चोद्दस० देसूणा। सणक्कुमारादि जाव सहस्सार० सव्वपयडि० सव्वपदवि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्द० देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदे त्ति सव्वपय० सव्वपदवि० लोग० असंखे०भागो छ चोद्दस० देसूणा। एवं सुक्क०। उवरि खेत्तभंगो। एवमाहार०-आहारमिस्स०-अवग०-अकसा०-मणपज्ज०-संजद०-सामाइय छेदो० परिहार०-सुहुम०-जहाक्खाद०-अभवसिद्धिया त्ति।

§ १२२. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० तिण्हं पदाणमोघं। सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। एवं चत्तारिकाय-बादरअपज्ज०-सव्वेसिं सुहुमपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय०अपज्ज०-वणप्फदि-णिगोद०-ओरालिय-मिस्स०-कम्मइय०-मदि०-सुद०-मिच्छाइट्ठि-असण्णि०-अणाहारि त्ति।

स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेसे कुछकम आठ और कुछकम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार सौधर्म और ऐशान स्वर्गके देवोंके जानना चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके इसीप्रकार जानना। किन्तु इतनी विशेषता है कि उन्होंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेसे कुछकम साढेतीन, कुछकम आठ और कुछकम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेसे कुछकम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। आनतसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेसे कुछकम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसीप्रकार शुक्ल-लेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। ऊपर नौ ग्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है। इसीप्रकार आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, अपगतवेदी, अकषायी, मनःपर्ययज्ञानी, सयत, सामायिकसयत, छेदोपस्थापनासयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसापरायिकसयत, यथाख्यातसयत और अभव्य जीवोंके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्वमें नरकगति आदिमें स्पर्शका जो विवेचन किया है उसे ध्यानमें रखते हुए देवोंमें और उनके अवान्तर भेदोंमें यदि सब प्रकृतियोंके यथासम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शका विचार किया जाता है तो किस अपेक्षा कहाँ कितना स्पर्श बतलाया है यह बात सहज ही समझमें आजाती है। इसीलिये यहाँ अलग अलग खुलासा नहीं किया है। तथा 'एव' कह कर जो आहारककाय-योग आदिमें स्पर्शका निर्देश किया है उसका यही अभिप्राय है कि जिसप्रकार नौ ग्रैवेयक आदिमें स्पर्श क्षेत्रके समान है उसी प्रकार इन मार्गणाओंमें भी जानना चाहिये।

§ १२२ एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पदवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है। इसीप्रकार पृथिवीकायिक आदि चार स्थावरकाय इनके बादर तथा बादर अपर्याप्त, सभी सूक्ष्म तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर और इनके अपर्याप्त, वनस्पतिकायिक, निगोद, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मण काययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि, असंज्ञी और अनाहारक जीवोंके जानना चाहिये।

§ १२३ पंचिंदिय-पंचिं०पज्ज०-तस-तसपज्ज० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० तिण्णिपद०वि० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा सव्वलोगो वा। णवरि इत्थि०-पुरिस० भुज०-अवट्ठि० अट्ठ बारस चोद्दस० देसूणा। अणंताणु०चउक्क० एव चेव। णवरि अवत्तव्व० ओघ। सम्मत्त-सम्मामि० ओघं। एवं पंचमण०-पंचवचि० इत्थि०-पुरिस० चक्खु०-सण्णि त्ति। णवरि इत्थि०-पुरिसवेदमग्गणासु इत्थि०-पुरिस० भुज०-अवट्ठि० अट्ठ चोद्दस० देसूणा।

§ १२४ वेउव्विय० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० तिण्णिपद० लोग० असंखे०

विशेषार्थ—एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंके तीन पदवालोंके स्पर्शको ओघके समान सब लोक बतलानेका कारण यह है कि ये जीव सब लोकमें पाये जाते हैं। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतर स्थितिवालोंके स्पर्शको पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान बतलानेका कारण यह है कि जिसप्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंमें इन प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिवालोंका वर्तमान कालीन स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्श सब लोक पाया जाता है उसी प्रकार एकेन्द्रियोंमें भी बन जाता है। इसीप्रकार चारों स्थावरकाय आदि मार्गणाओंमें स्पर्शका विवेचन कर लेना चाहिये।

§ १२३ पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियपर्याप्त त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी तीन पदविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार, और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसीप्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका स्पर्श ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अपेक्षा स्पर्श ओघके समान है। इसी प्रकार पाँचों मनोयोगी पाँचों वचनयोगी स्त्रीवेदवाले पुरुषवेदवाले चक्षुदर्शनवाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्री और पुरुषवेद मार्गणाओंमें स्त्री और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय आदि चार मार्गणाओंमें ओघ स्पर्श तो सुगम है। किन्तु स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवालोंका स्पर्श जो कुछकम आठबटे चौदह राजु बतलाया है वह विहार आदिकी अपेक्षा बतलाया है। तथा कुछकम बारहबटे चौदह राजु स्पर्श मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा बतलाया है। यहाँ इन दोनों प्रकृतियोंके उक्त पदोंकी अपेक्षा इससे अधिक स्पर्श नहीं प्राप्त होता। इसी प्रकार पाँच मनोयोगी आदि मार्गणाओंमें भी घटित कर लेना चाहिये। किन्तु स्त्रीवेद और पुरुषवेद मार्गणाओंमें जो स्त्रीवेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिवालोंका स्पर्श कुछकम आठबटे चौदह राजु बतलाया है सो इसका कारण यह है कि ये जीव अधिकतर देव होते हैं जो तीसरे नरकतक नीचे और अच्युत कल्पतक ऊपर विहार करते हुए पाये जाते हैं। इसके ऊपर यद्यपि पुरुषवेदी जीव हैं पर वे विहार नहीं करते अतः उनका स्पर्श लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है इसलिये उससे इस स्पर्शमें कोई विशेषता नहीं आती।

§ १२४ वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यात्व बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी तीन पदवाले

भागो अट्ठ तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा। णवरि इत्थि०-पुरिस० भुज०-अवट्ठि० अट्ठ-बारस चोद्दस० देसूणा। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि अवत्तव्व० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदर० मिच्छत्तभंगो। सेस० ओघ। वेउव्वियमिस्स० खेत्तभंगो।

§ १२५. विहंग० मिच्छत्त०-सोलसक०-णवणोक० तिण्णिपदा सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदर० पंचिंदियभंगो। आभिणि०-सुद०-ओहि० सव्वपयडि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्द० देसूणा। एवमोहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०-उवसम०-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति। संजदासंजद० सव्वपयडि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो छ चोद्दस भागा वा देसूणा। तेउ० सोहम्मभंगो। पम्म० सहस्सारभंगो। सासण० सव्व-पयडि० अप्पदर० लोग० असंखे०भागो अट्ठ बारस चोद्दस० देसूणा।

एवं पोसणाणुगमो समत्तो।

जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ और कुछकम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेपता है कि स्त्रीवेद और पुरुपवेदकी भुजगार और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछकम आठ और कुछकम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिभक्तिवाले जीवोंका भंग ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका-भग मिथ्यात्वके समान है। तथा शेष कथन ओघके समान है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें क्षेत्रके समान भग है।

विशेषार्थ—अन्यत्र वैक्रियिककाययोगियोंका स्पर्श जो तीन प्रकारका बतलाया है वही यहाँ मिथ्यात्व आदिके तीन पदोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है जो मूलमें बतलाया ही है। किन्तु इनमें स्त्री-वेद और पुरुषवेदकी भुजगार और अल्पतर स्थितिवालोंका वही स्पर्श प्राप्त होता है जो पचेन्द्रिय जीवोंके पहले बतला आए हैं इसलिये यहाँ इसका तत्प्रमाण कथन किया। वैक्रियिककाययोगियोंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका स्पर्श इसी प्रकार है। यह जो कहा है सो इसका यह तात्पर्य है कि जिस प्रकार इनमें मिथ्यात्व आदिके सम्भव पदोंका स्पर्श बतलाया है उसीप्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके अवक्तव्य पदको छोडकर शेप पदोंका स्पर्श जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ १२५ विभगज्ञानियोंमे मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पद और सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिका भग पचेन्द्रियोंके समान है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमे सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया हे। इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके जानना चाहिए। सयतासयतोंमे सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। पीतलेश्याका भग सौधर्मके समान और पद्मलेश्याका भंग सहस्रार कल्पके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमे सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंने लोकके असख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

* णाणाजीवेहि कालो ।

§ १२६ सुगममेदं ।

* सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ?

§ १२७ एदं पि सुगमं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

§ १२८ कुदो ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार अवट्ठिद-अवत्तव्वाणि एगसमयं काऊण विदियसमए सव्वेसिं जीवाणमप्पदरस्स गमणुवलंभादो ।

* उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

§ १२९ कुदो ? सगसगंतरकाले अदिक्कंते भुजगार अवट्ठिद-अवत्तव्वाणि कुणमाणाणं णिरंतरमावलि० असंखे०भागमेत्तकालमवट्ठिदावत्तव्व-भुजगाराणमुवलंभादो ।

* अप्पदरट्ठिदिविहत्तिया केवचिरं कालादो होंति ?

§ १३० सुगमं ।

* सव्वद्धा ।

विशेषार्थ—यहाँ विभंगज्ञानी आदि जितनी मार्गणाओंमें अपने अपने सम्भव पदोंकी अपेक्षा स्पर्शन बतलाया है वह उन उन मार्गणाओंके स्पर्शनको जान कर घटित कर लेना चाहिए। कोई विशेषता न होनेसे उसका इसमें अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है।

इसप्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

* अब नानाजीवोंकी अपेक्षा कालानुगमका अधिकार है।

§ १२६ यह सूत्र सुगम है।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ?

§ १२७ यह सूत्र भी सुगम है।

* जघन्य काल एक समय है।

§ १२८ क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंको एक समय तक करके दूसरे समयमें उन सब जीवोंका अल्पतर स्थितिविभक्तिमें गमन पाया जाता है।

* उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ १२९ क्योंकि अपने अपने अन्तरकालके व्यतीत हो जाने पर भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंको करनेवाले जीवोंके निरन्तर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक अवस्थित अवक्तव्य और भुजगार पद पाये जाते हैं।

* अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ?

§ १३० यह सूत्र सुगम है।

* सब काल है।

§ १३१. कुदो ? णाणाजीवप्पणाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पदरट्ठिदिविहत्तियाणं तिसु वि कालेसु विरहाभावादो ।

*** सेसाणं कम्माणं विहत्तिया सव्वे सव्वद्धा ।**

§ १३२. कुदो, अणंतरासीसु भुजगार-अवट्ठिद-अप्पदराणं विरहाभावादो ।

*** णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वट्ठिदिविहत्तियाणं जहण्णेण एगसमओ ।**

§ १३३. कुदो, अवत्तव्वं कुणमाणजीवाणमाणंतियाभावादो । ण सम्मत्तअप्पदरविहत्तिएहि वियहिचारो; सम्मत्तप्पदरस्सेव अणंताणुबंधीणमवत्तव्वस्स सगपाओग्गगुणद्धाए-सव्वसमए असंभवादो ।

---

§ १३१ क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षासे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिको करनेवाले जीवोंका तीनों ही कालोंमें विरह नहीं होता ।

*** शेष कर्मोंकी सब स्थितिविभक्तिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं ।**

§ १३२ क्योंकि शेष कर्मोंकी भुजगार, अवस्थित और अल्पतर स्थितिविभक्तियोंको करनेवाली जीवराशि अनन्त है, अतः उनका कभी विरह नहीं होता ।

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय है ।**

§ १३३ क्योंकि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिको करनेवाले जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं है । यदि कहा जाय कि इस तरह तो सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंके साथ व्यभिचार हो जायगा, क्योंकि इनका प्रमाण भी अनन्त नहीं है अतः इनका भी विरह पाया जाना चाहिये, सो बात नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिके योग्य सब काल है उस प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिके योग्य सब काल नहीं है अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सर्वदा पाया जाना सम्भव नहीं है ।

विशेषार्थ—यहाँ यह बतलाया है कि चूँकि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवालोंका प्रमाण अनन्त नहीं है अतः उनका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय बन जाता है । इस पर यह शंका की गई है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका भी प्रमाण अनन्त नहीं है परन्तु उनका काल सर्वदा बताया है अतः उस कथनके साथ इसका व्यभिचार प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवाले जीव भी असंख्यात हैं और अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीव भी असंख्यात हैं । अतः अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीव अनन्त नहीं होनेसे इनका जघन्य काल यदि एक समय माना जाता है तो 'अनन्त नहीं होनेसे' यह हेतु व्यभिचरित हो जाता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवाले जो कि अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवालोंके विपक्ष हैं उनमें भी यह हेतु चला जाता है । वीरसेन स्वामी ने इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यद्यपि ये दोनों विभक्तिवाले जीव असंख्यात हैं फिर भी सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिवालोंका सर्वदा काल बन जाता है, क्योंकि सम्यक्त्वकी अल्पतर स्थितिका एक जीवकी अपेक्षा जो जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है उसे देखते हुए उसका सर्वदा पाया जाना सम्भव है। परन्तु यह बात अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्यस्थितिकी नहीं है क्योंकि एक जीवकी अपेक्षा

* उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

§ १२४ कारणं सुगमं । एवं जइवसहाइरियदेसामासियसुत्तस्स परूवणं काऊण संपहि तेण सूचिदत्थस्सुच्चारणमस्सिदूण कस्सामो ।

§ १२५ कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसे० । तत्थ ओघेण मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि० केवचिरं ? सव्वद्धा । अणंताणु० एवं चेव । णवरि अवत्तव्व० केवचिरं ? जह० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । सम्मत्त-सम्मामि० अप्पदर० केवचिरं० ? सव्वद्धा । सेसपदवि० केवचिरं ? जह० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । एवं तिरिक्ख०-कायजोगि०-ओरालिय०-णवुंस०-चत्तारिक०-असंजद०-अचक्खु०-तिण्णिले०-भवसि० आहारि त्ति ।

§ १२६ आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० अप्पद०-अवट्ठि० केव० ? सव्वद्धा । भुज० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो । अणंताणु०चउक्क० अप्पदर०-अवट्ठि० मिच्छत्तभंगो । भुज० अवत्तव्व० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०

इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ही बतलाया है । अब यदि नाना जीव एक साथ अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थितिको प्राप्त हों और दूसरे समयमें अन्य जीव इस पदको न प्राप्त हों तो इसका जघन्य काल एक समय भी बन जाता है । यही कारण है कि अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थितिवालोंका प्रमाण असंख्यात होते हुए भी नाना जीवोंकी अपेक्षा भी इसका जघन्य काल एक समय बतलाया है ।

* उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ १२४ कारण सुगम है । इस प्रकार यतिवृषभ आचार्यके देशामर्षक सूत्रका कथन करके अब उसके द्वारा सूचित होनेवाले अर्थका उच्चारणाके आश्रयसे कथन करते हैं ।

§ १२५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । शेष पदस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार तिर्यञ्च, काययोगी, औदारिककाययोगी, नपुंसकवेदवाले, क्रोधादि चारों कषायवाले, असंयत, अचक्षुदर्शनवाले, कृष्णादि तीन लेश्यावाले, भव्य और आहारक जीवोंके जानना चाहिए ।

§ १२६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अल्पतर और अवस्थितस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका भंग मिथ्यात्वके समान है । भुजगार और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी

भागो। सम्मत्त-सम्मामि० ओघं। एवं सव्वणिरय-पंचिंदियतिरिक्ख पंचिं०तिरि०-पज्ज०-पंचिं०तिरि०जोणिणी-देव०-भवणादि जाव सहस्सार-पंचिंदिय-पंचि०पज्ज० तस तस-पज्ज०-पंचमण०-पंचवचि०-वेउव्विय०-इत्थि०-पुरिस०-चक्खु०-तेउ०-पम्म०-सण्णि त्ति।

१३७. पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छत्त-सोलसक० णवणोक० तिण्हं पदाणं णेरइयाणं भंगो। सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पदर० केव० ? सव्वद्धा। एवं वियलिंदिय पज्जत्तापज्जत्त पंचि०अपज्ज० बादरपुढविपज्ज० बादरआउपज्ज०-बादरतेउपज्ज० - बादरवाउपज्ज० -बादर-वणप्फदिपत्तेय[1]पज्ज०-तसअपज्ज०-विहंगणाणि त्ति।

अपेक्षा ओघके समान भंग है। इसी प्रकार सब नारकी, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, पचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिमती, सामान्य देव, भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार स्वर्गतकके देव, पचेन्द्रिय, पचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रस पर्याप्त, पाँचों मनोयोगी, पाँचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, स्त्रीवेद-वाले, पुरुषवेदवाले, चक्षुदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—नारकियोंके एक जीव की अपेक्षा मिथ्यात्व आदि २२ प्रकृतियोंकी अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तियोंका जो काल बतला आये हैं उसे देखते हुए यहाँ नाना जीवों की अपेक्षा उनका सर्वदा काल प्राप्त होता है अतः यहाँ उनका सर्वदा काल बतलाया है। किन्तु भुजगार स्थितिकी यह बात नहीं है। नाना जीवोंकी अपेक्षा भी यदि इसके उपक्रम कालका विचार किया जाता है तो उसका जघन्य प्रमाण एक समय और उत्कृष्ट प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भाग-प्रमाण प्राप्त होता है इसलिये यहाँ इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके पदोंका भी यथायोग्य विचार कर लेना चाहिये। सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी अल्पतर स्थितिवाले जीव नरकमें भी सर्वदा पाये जाते हैं। अब रहे शेष पदवाले जीव सो उनका उपक्रम कालके अनुसार पाया जाना सम्भव है। ओघमें भी यही बात है। अतः सम्य-क्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सब पदोंके कालको ओघके समान बतलाया। आगे जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान बतलाया।

§ १३७ पचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन पदवाले जीवोंका भंग नारकियोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थिति-विभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है। इसी प्रकार विकलेन्द्रिय और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, त्रस अपर्याप्त और विभंगज्ञानी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंके अल्पतर आदि तीन पदोंका काल नारकियोंके समान बन जाता है इसलिये यहाँ इनके कथनको नारकियोंके समान बतलाया है। यहाँ अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थिति नहीं होती यह स्पष्ट ही है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी एक अल्पतर स्थिति ही होती है। साथ ही यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वकी सत्तावाले जीव नियमसे पाये जाते हैं, इसलिये इसका काल सर्वदा बतलाया है। आगे जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी यह व्यवस्था बन जाती है अत उनके कालको पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान बतलाया है।

---

1 ता० प्रतौ 'अपज्ज०' इति पाठः।

१३८. मणुस० मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० णेरइयभंगो। अणंताणु०चउक्क० एवं चेव। णवरि अवत्त० केव० ? जह० एगस०, उक्क० संखेज्जा समया। सम्मत्त० सम्मामि० अप्पदर० केव० ? सव्वद्धा। भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वाणं केव० ? जह० एगस०, उक्क० संखे० समया। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं। णवरि जम्मि आवलि० असंखे०भागो तम्मि संखेज्जा समया। मणुसअपज्ज० मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोक० भुज० अप्पद० अवट्ठि० सम्मत्त-सम्मामि० अप्प० के० ? ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। णवरि भुज० आवलि० असंखे०भागो।

१३९. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जो त्ति मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० अप्पदर० सव्वद्धा। अणंताणु०चउक्क० अवत्त० ओघं। सम्मत्त-सम्मामि० भुजगार० अवट्ठि० अवत्तव्व० ज० एगसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अप्पदर० सव्वद्धा। एवं सुक्के०। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठ० अट्ठावीसपय० अप्पद० सव्वद्धा। एवमाभिणि०

§ १३८ सामान्य मनुष्योंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग नारकियोंके समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अपेक्षा इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? सब काल है। भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ आवलीका असंख्यातवाँ भाग काल कहा है वहाँ संख्यात समय काल कहना चाहिये। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि भुजगार स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—मनुष्योंमें अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिवाले जीव संख्यात ही होते हैं अतः इनमें उक्त विभक्तिवालोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समय बतलाया है। यही बात सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिवालोंके सम्बन्धमें जान लेना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी तो संख्यात ही होते हैं अतः मूलमें सामान्य मनुष्योंमें जिन स्थितिविभक्तिवालोंका आवली के असंख्यातवें भाग काल बतलाया है वहाँ भी इनके संख्यात समय काल जानना चाहिये। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है अत यहाँ सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बतलाया। किन्तु भुजगार स्थितिका उत्कृष्ट काल ही आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः इसकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया।

§ १३९ आनतकल्पसे लेकर उपरिम ग्रैवेयकतकके देवोंमें मिथ्यात्व सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका सब काल है। किन्तु अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा

सुद०-ओहि०--मणपज्ज०-संजद०-सामाइय-छेदो०-परिहार०-संजदासंजद०-ओहिदंस०-सम्मादि०-खइय०-वेदय०दिट्ठि त्ति ।

१४०. एइंदिएसु मिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० सव्वपदाणमोघं । सम्मत्त०-सम्मामि० अप्पद० केव० ? सव्वद्धा । एवं वादरेइंदिय-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्त-बादर-पुढविअपज्ज०-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्त—बादरआउअपज्ज०-सुहुमआउपज्जत्तापज्जत्त-बादरतेउअपज्ज०-सुहुमतेउपज्जत्तापज्जत्त-बादरवाउअपज्ज०-सुहुमवाउपज्जत्तापज्जत्त-वणप्फदि-णिगोद-बादरसुहुमपज्जत्तापज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरअपज्ज०-ओरालिय-मिस्स०-मदि०सुद०-मिच्छादि० असण्णि त्ति ।

है। इसी प्रकार शुक्ललेश्यावाले जीवोंके जानना चाहिए। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, संयतासंयत, अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—आनतादिकमें मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थिति ही होती है अतः वहाँ इसका सर्वदा काल बन जाता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीकी अवक्तव्य स्थिति भी होती है सो उपक्रम कालके अनुसार इसका यहाँ भी ओघके समान काल बतलाया है। अब रहीं सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियाँ सो इनके यहाँ चारों पद बन जाते हैं। उनमेंसे तीन पदोंका तो उपक्रम कालके अनुसार जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है। और अल्पतर स्थितिवालोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है इसलिये इसका सर्वदा काल बतलाया है। शुक्ललेश्यामें यह व्यवस्था बन जाती है, अतः उसमें सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंके कालको पूर्वोक्त प्रमाण कहा है। अनुदिशादिमें तो सब प्रकृतियोंकी एक अल्पतर स्थिति ही होती है, परन्तु वहाँ सब प्रकृतियोंका सर्वदा सद्भाव पाया जाता है इसलिये वहाँ अल्पतर स्थितिका सर्वदा काल बतलाया है। आभिनिबोधिकज्ञानी आदि जो और मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें भी इसी प्रकार बतलानेका कारण यह है कि उनमें भी अनुदिशादिकके समान व्यवस्था प्राप्त होती है।

§ १४० एकेन्द्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके सब पदोंका भंग ओघके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका कितना काल है? सब काल है। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय और इन दोनोंके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म पृथिवीकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अग्निकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक और इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, वनस्पति, निगोद तथा इन दोनोंके बादर और सूक्ष्म तथा पर्याप्त और अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येक शरीर अपर्याप्त, औदारिकमिश्रकाययोगी, मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके जानना चाहिए।

विशेषार्थ—ओघमें मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित पदोंका जो काल कहा है वह एकेन्द्रियोंकी मुख्यतासे ही बतलाया है अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके उक्त पदोंके कालको ओघके समान कहा। तथा एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक अल्पतर

§ १४१. आहार० सव्वपयडी० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवमवगद०-अकसा०-सुहुम०-जहाक्खादे त्ति । आहारमिस्स० सव्वपयडी० अप्पद० जहण्णुक० अंतोमु० । वेउव्वियमिस्स० मणुसअपज्जत्तभंगो । अभव० छव्वीसपयडी० मदि०भंगो ।

§ १४२. उवसम० सव्वपयडी० अप्पद० ज० अंतोमु०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स वि । सासण० सव्वपयडी० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । कम्मइय० अणाहारि० ओरालियमिस्स०-भंगो । णवरि सम्मत्त-सम्मामि० अप्पद० ज० एगस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो ।

एवं कालाणुगमो समत्तो ।

पद ही होता है और वहाँ उनका सदा सद्भाव पाया जाता है अतः वहाँ अल्पतर पदका सर्वदा काल कहा है। बादर एकेन्द्रिय आदि जो बहुत सी मार्गणाएँ गिनाई हैं उनमें यह व्यवस्था बन जाती है अतः उनके कालको एकेन्द्रियोंके समान कहा है।

§ १४१. आहारककाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतरस्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी, अकषायी, सूक्ष्म सांपरायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके जानना चाहिए। आहारकमिश्रकाययोगियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मनुष्य अपर्याप्तकोंके समान भंग है। अभव्योंमें छब्बीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा मत्यज्ञानियोंके समान भंग है।

विशेषार्थ—आहारककाययोगका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इसमें सब प्रकृतियोंका एक अल्पतर पद ही होता है। यही कारण है कि यहाँ सब प्रकृतियोंके अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। इसी प्रकार अपगतवेद आदि मार्गणाओंमें भी समझना चाहिये। किन्तु आहारकमिश्रका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही है अतः वहाँ सब प्रकृतियोंके अल्पतर पदका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका भी इतना ही काल है अतः वैक्रियिकमिश्रकाययोगका भंग लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंके समान बतलाया है। अभव्य मत्यज्ञानी ही होते हैं, अतः इनका भंग मत्यज्ञानियोंके समान बतलाया है।

§ १४२. उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि के भी जानना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टियोंमें सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्टकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है। कार्मणकाययोगी और अनाहारकोंमें औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिविभक्तिवाले जीवोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—उपशम सम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः वहाँ सब प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिका काल उक्त प्रमाण बतलाया है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके भी जानना चाहिये। किन्तु सासादन

* **अंतरं ।**

§ १४३. सुगमं, अहियारसंभालणफलत्तादो।

* **सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवत्तव्वट्ठिदिविहत्तियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?**

§ १४४. एदं पि सुगमं ।

* **जहण्णेण एगसमओ ।**

§ १४५. कुदो ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारमवत्तव्वं च कादूण सम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवाणं जह० एगसमयमेत्तंतरुवलंभादो ।

* **उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेगे ।**

§ १४६. सामण्णेण सम्मत्तग्गहणंतरकालो चउवीसं अहोरत्तमेत्तो त्ति पुव्वं परूविदो। संपहि अवत्तव्वभावेण सम्मत्तग्गहणंतरकालो वि तत्तिओ चेवे त्ति कथमेदं जुज्जदे ? ण एस

सम्यग्दृष्टियोंका जघन्य काल एक समय है, अतः यहाँ जघन्य काल एक समय बतलाया है। उत्कृष्ट काल पूर्ववत् है। कार्मणकाययोग और अनाहारक जीवोंका सर्वदा काल है। यही बात औदारिकमिश्रकी है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके सम्भव पदोंका काल औदारिकमिश्रके समान बन जाता है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अल्पतर स्थितिवालोंके कालमें विशेषता है। बात यह है कि एक जीवकी अपेक्षा कार्मणकाययोग और अनाहारक अवस्थाका उत्कृष्ट काल तीन समयसे अधिक नहीं है और सम्यक्त्व तथा सम्यामिथ्यात्वकी सत्तावाले जीव असंख्यात होते हुए भी स्वल्प हैं। अब यदि उपक्रम कालकी अपेक्षा विचार किया जाता है तो यहाँ आवलिके असख्यातवें भागसे अधिक काल नहीं प्राप्त होता। अतः यहाँ उक्त दोनों प्रकृतियोंकी अल्पतर स्थितिवालोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है।

इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ।

* **अब अन्तरानुगम का अधिकार है ।**

§ १४३ यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका फल अधिकारका सम्हालनामात्र है।

* **सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्य स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ?**

§ १४४. यह सूत्र भी सुगम है।

* **जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।**

§ १४५ क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवक्तव्यके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल एक समयमात्र पाया जाता है।

विशेषार्थ—सम्यग्दर्शनके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी भुजगार और अवक्तव्य स्थिति होती है। अब यदि प्रथम और तीसरे समयमें बहुतसे जीव उक्त पदोंके साथ सम्यग्दर्शनको प्राप्त हुए और दूसरे समयमें नहीं हुए तो उक्त पदोंका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त हो जाता है। यह उक्त सूत्रका भाव है।

* **उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक चौबीस दिन रात है ।**

§ १४६. **शंका**—पहले सामान्यसे सम्यक्त्वके ग्रहणका अन्तरकाल चौबीस दिन रात कहा है अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अवक्तव्यस्थितिविभक्तिके साथ सम्यक्त्व ग्रहणका अन्तर-

दोसो, सादिरेयचउवीसअहोरत्तमेत्तंतरस्स भुजगार अवत्तव्वद्विदिविहत्तीणं परूवणादो ।

* अवट्ठिदट्ठिदिविहत्तियंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ १४७ सुगमं ।

* जहण्णेण एगसमओ ।

§ १४८ एदं पि सुगमं ।

* उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ १४९ कुदो ? सम्मत्तट्ठिदीदो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मं मोत्तूण सेसट्ठिदिसंतकम्मेहि संखे०सागरोवमसहस्समेत्तेहि सम्मत्तं पडिवज्जमाणाणं अंगुलस्स असंखे०भागमेत्तंतरस्स समत्थं पडि विरोहाभावादो । संखेज्जसागरोवमसहस्समेत्तमुक्कस्संतरमिदि भणिय अंगुलस्स असंखे०भागमेत्तमिदि किमट्ठं वुच्चदे ? ण, पुणो पुणो दुसमउत्तरादिट्ठिदीसु हाइदूण सम्मत्तं पडिवज्जमाणाणं जीवाणं बहुअमंतरमुवलब्भदि त्ति अंगुलस्स असंखे० भागमेत्तंतरुवएसादो[1] । एक्केक्किस्से ट्ठिदीए असंखे०लोगमेत्तट्ठिदिबंधज्झवसाणट्ठाणाणि अत्थि । तेसु अंतरिय असंखे०लोगमेत्तंतरपमाणपरूवणा किण्ण कीरदे ? ण, ट्ठिदिअंतरे

भाग भी इतना ही कहा जा रहा है सो यह कैसे बन सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि यहाँ भुजगार और अवक्तव्य स्थितिविभक्तियोंका अन्तरकाल केवल चौबीस दिनरात न कहकर साधिक चौबीस दिन रात कहा है ।

* अवस्थित स्थितिविभक्तिका अन्तरकाल कितना है ?

§ १४७ यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ १४८. यह सूत्र भी सुगम है । तात्पर्य यह है कि यह पद भी सम्यग्दर्शनको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें हो सकता है । अब यदि नाना जीवोंने इस पदके साथ पहले और तीसरे समयमें सम्यग्दर्शनको प्राप्त किया और दूसरे समयमें नहीं किया तो इसका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है ।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ १४९ क्योंकि सम्यक्त्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मको छोड़कर संख्यात हजार सागर प्रमाण शेष स्थितिसत्कर्मके द्वारा सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र अन्तरके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार सागरप्रमाण है ऐसा न कहकर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ऐसा किसलिये कहा है ?

समाधान—नहीं क्योंकि सम्यक्त्वकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी दो समय अधिक आदि स्थितियोंके द्वारा पुनः पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके बहुत अन्तर पाया जाता है, इसलिये अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर कहा है ।

शंका—एक एक स्थितिके असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान होते हैं । अतः उन सबका अन्तर करने पर अन्तरका प्रमाण असंख्यात लोक प्राप्त होता है इसलिये यहाँ असंख्यात लोक प्रमाण अन्तरकालकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

1 ता० प्रती-'रुवएसादो' इति पाठः ।